हिन्दी-प्रेमियोंसे अनुरोध

इस मण्डलके स्थायी ग्राहक होनेके नियम पुस्तकके अन्तमें दिये हुए हैं। आप उन्हें एक बार अवश्य पढ़ लें और अपनी रुचिके अनुसार स्थायी ग्राहक होकर व अपने मित्रों-को बनाकर इस मण्डलकी पुस्तकोंके प्रचारमें सहायता पहुचावें।

वर्ष १] सस्ती विविध पुस्तकमाला

(सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला)

सीताकी अग्नि-परीक्षा

(काव्य, इतिहास, विज्ञान)

लेखक—

राय कालीप्रसन्न घोष बहादुर

विद्यासागर।

अनुवादक

ठाकुर देवबलीसिंह

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल

अजमेर

प्रथम बार] १९२६ [मूल्य ।-)

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,
अजमेर

लागत का व्योरा

कागज	१२५)
छपाई	१४०)
बाइंडिंग	१५)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	१५७)
कुल जोड़	४३७)

प्रतियां २०००

एक प्रति का मूल्य ≡)॥

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका
"हनुमान प्रेस"
३, माधो सेठ लेन, कलकत्ता।

भूमिका ।

"जो प्रत्यक्ष है, प्रामाणिक है, वही ध्रुव सत्य है, विश्वसनीय है, इसके अतिरिक्त लोकातीत और ज्ञानातीत कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जिसको मनुष्य अपने उद्योग और अध्यवसायसे आयत्तन कर सके।" आधुनिक विज्ञानका यह दम्भपूर्ण सिद्धान्त ठीक वैसा ही भ्रमपूर्ण और वेजड़ है, जैसा एक दूधमुंहे बच्चेका कहना कि मेरी ही अभिज्ञता संसारकी अभिज्ञता है और जिसे मैं नहीं जानता वह संसारके लिये अपरिज्ञेय है। वास्तवमें यह कितनी हास्यजनक बात है कि क्षुद्र मानव अनादि अनन्त कालव्यापी प्रकृतिके नियमको अपनी तुच्छातितुच्छ अभिज्ञता और अल्पज्ञताके भीतर सीमाबद्ध समझे! आजकलके नये नये आविष्कारों और ज्ञान-विज्ञानकी क्रमिक उन्नतिसे क्या यह बात सिद्ध नहीं होती, कि आज जो असम्भव और असाध्य है वही समय पाकर कभी संभव और सुसाध्य हो सकता है? उसी प्रकार असंख्यों विलुप्त-प्राय धर्मों, जातियों और देशोंके विवादपूर्ण इतिहाससे क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि प्राचीन कालके ऋषि मुनि और महात्माओंके लिये जो कार्य सहजसाध्य था वही काल गतिसे हम लोगोंके लिये असम्भव और असाध्य प्रतीत होने लगा है?

विजातीय शिक्षा और सभ्यताके विकारसे अनेकों भ्रान्त-नवयुवक आजकल रामायण और महाभारत की पवित्र कथाओं को काल्पनिक और कपोलकल्पित गप्पें (Fictions) कहकर उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे हैं। विकृत बुद्धिवाले ये हतभाग्य

वयुक प्रत्येक स्थूल अथवा सूक्ष्म सत्यको समझनेके पहले एक बार वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी आवृत्ति कर लेते हैं। यदि उनसे इनकी कुशङ्काओंका समाधान हुआ तब तो ये लोग सत्यको सत्य कहकर घोषित करेंगे परन्तु यदि इनका विज्ञान कोई सन्तोष-जनक उत्तर न दे सका तब वालमीकि व्यास क्या, स्वयं इनकी बुद्धिके स्रष्टा भी आकर इनको समझा नहीं सकते।

प्रस्तुत पुस्तकमें कविगुरु वालमीकिके महाकाव्यकी एक चिरस्मरणीय घटनाको लेकर, नाना देशोंके काव्य, इतिहास और विज्ञानके अनेकों दृष्टान्तों द्वारा यह दिखलानेकी चेष्टा की गई है कि रामायण और महाभारतकी कोई भी घटना कल्पनासम्भूत और अतिरञ्जित नहीं है। स्वनामधन्य श्रीयुत कालीप्रसन्न घोष विद्यासागर महाशयकी सुयोग्य लेखनी इस प्रयत्नमें कहांतक सफल हुई है, बङ्गला साहित्यमें इस पुस्तककी लोकप्रियतासे ही इस बातका पता लग सकता है। अब रही अनुवादकी बात—इसका विवेचन पाठकोंके अधीन रहा।

इस पुस्तकके अनुवादमें हमें अपने बंगाली मित्र श्रीमान बाबू हेमन्तकुमार दत्त बी० ए० और श्रीमान् बाबू सुधांशुकुमार रायसे विशेष सहायता मिली है। इसके लिये हम उनके विशेष कृतज्ञ हैं। प्रकाशन और प्रूफसंशोधन सम्बन्धी उपकारोंके लिये श्रीयुक्त पं० जगदीशनारायणजी तिवारीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। अस्तु।

विनीत—

अनुवादक

सीताकी अग्नि-परीक्षा

काव्य-इतिहास-विज्ञान

प्रथम परिच्छेद

"पाप्मभ्यश्च पुनातु वर्द्धयतु च श्रेयांसि सेयं कथा ।
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतेव मातेव गङ्गेव च" ॥ *

†सुवेल नामक पर्वतकी ऊंची चोटीके निकट, समुद्रके किनारे, लङ्काके उत्तरी दरवाजेपर आज बड़ी भीड़ है। विशाल-काय मेघनाद और महापराक्रमी रावणके वधके समय लङ्काके बाहरी

---

*संसारका मङ्गल करनेवाली, संसारके मनुष्योंको मुग्ध करनेवाली, माताकी तरह ससारका हित चाहनेवाली, गंगाकी तरह पापोंका नाश करनेवाली उस जानकीके चरित्रकी कहानी मनुष्योंको पापोंसे बचावे और सभीके सुखसम्पदको बढ़ावे।

† वाल्मीकिके भूगोलके अनुसार लङ्काके चारों ओर चार मैदान थे। उत्तर दिशाके मैदानकी शेष सीमापर समुद्रके किनारे एक छोटा पर्वत था। उसका नाम था सुवेल। जैसा कि वाल्मीकिके युद्धकाण्डके ३७ वें सर्गमें है:—

"सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान् प्रभु',
रमणीयतरं दृष्ट्वा सुवेलस्य गिरेस्तटम्।"

फाटकपर मनुष्योंकी जो भीड़ हुई थी, आज उससे भी कहीं अधिक भीड़ है। एक ओर रावणकी प्राचीर-परिवेष्टित काव्य-वर्णित रमणीय लङ्का है और दूसरी ओर दक्षिण भारतका कटिबन्ध-स्वरूप उत्ताल तरंगोंवाला विशाल समुद्र लहरें मार रहा है। बीचमें बहुत दूरतक फैला हुआ विस्तीर्ण मैदान है। आज इस बड़े मैदानमें बित्तेभर भी जमीन खाली नहीं, सभी दर्शकोंसे भरी हुई है।

तथापि विचित्रता तो यह है कि लङ्काके निकट आजकी इकट्ठी हुई यह जनता मूक बनकर अथवा असंख्यों चित्र लिखीसी मूर्त्तियोंकी भांति शान्त और स्तब्ध हो श्वास रोके खड़ी है। जहां किसी विशेष कारणसे बहुतसे लोग अनायास एकत्र हो जाते हैं वहां उनके मीठे और कड़े, धीरे और जोरसे बातचीत करनेकी आवाजके मिल जानेसे एक बड़ा कोलाहल मच जाता है। किन्तु आजका यह जनसमुद्र भयङ्कर तूफानके पूर्वकी निस्तब्ध प्रकृतिके समान एकदम निःशब्द है। सब अपने अपने स्थानपर निश्चल निस्पन्द भावसे ठीक पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह अपने आपमें लीन हैं। मुख खोलकर बोलने और आंख उठाकर सामने खड़े मनुष्यकी ओर ताकनेका भी किसीको साहस नहीं होता। इसका कारण क्या है?

पूर्वोक्त दर्शक-मण्डलीके बीच, मिट्टीके चबूतरेपर जटा-वल्कल-धारी विश्वविजयी रामचन्द्रजी विषण्ण भावसे बैठे हैं, हाथका धनुषबाण दूर फेंका पड़ा है, मुख उदास और नेत्र क्रोधसे

जल रहे हैं। बीच बीचमें हृदय और मनको दग्ध कर देनेवाला दीर्घ श्वास उन्हें क्षुब्ध कर रहा है। देखनेसे मालूम होता है कि रामचन्द्रजीका हृदय फटकर टूक टूक हो रहा है और हृत्पिण्ड मानों किसी गुप्त और अचिन्तनीय दुःखसे जलकर खाक हो रहा है। श्रीरामचन्द्रजीकी दाहिनी और बाईं ओर सुग्रीव, अंगद विभीषण आदि लङ्का-युद्धके सहायक मित्रगण बैठे हैं। आगे कुछ दूरपर भ्रातृ-वत्सल लक्ष्मण और भक्त-शिरोमणि वीर-श्रेष्ठ हनुमान हैं; सम्मुख,आंखोंके सामने स्त्रीसमाजकी आदर्शरूपिणी,कोमलांगी, ऋषि-मुनियोंकी आराध्यदेवी, निर्म्मलता और पवित्रताकी प्रति-मूर्त्ति अयोध्याकी राजलक्ष्मी श्रीजानकीजी खड़ी हैं।

जानकीजी हाथ जोड़े खड़ी हैं। एक समय था जब मिथिलाके राजभवन और अयोध्याके राजप्रासादमें जानकीजीके चारों ओर असंख्य दास दासियां भक्तिभाव युक्त हाथ जोड़कर खड़ी रहनेमें अपनेको उसी प्रकार कृतार्थ समझती थीं जैसे भक्त अपनी सर्व-दुःखनाशिनी, अभयदायिनी देवीकी मूर्त्तिको पूजकर अपनेको कृतार्थ समझता है। आज वही जानकी कृताञ्जलिपुट हो सिर झुकाये खड़ी हैं। जानकीजी सदा ही पतिके प्रेममें पागल, पतिके सुहागमें विभोर और पतिके हृदय-राज्यपर निर्द्वन्द्व अधिकार जमानेवाली अधिष्ठात्री देवी रही हैं, पर आज पतिके कोपानलमें पड़ी हुई हैं। वह अपने प्रेमपात्र और प्राणाधार पतिके सम्मुख उस भावसे कभी नहीं खड़ी हुई थीं जिस भावसे आज उन्हें खड़ा होना पड़ा है। प्रस्फुटित कमल सदृश उनके

नेत्रोंसे झर्झर आंसुओंकी धारा बह रही है। उनकी कोमल हृदयलतिका दुःखी और शोकातुर मनुष्यकी तरह रह रहकर कांप उठती है। वह इसी प्रकार सिर झुकाये आंसुओंकी धारा बहा रही हैं और "हाय यह क्या हुआ!" यह बार बार सोच रही हैं।

परन्तु जानकीजीकी अश्रुवर्षा अथवा शरीरके कम्पनसे भयका कोई चिह्न प्रकट नहीं होता। उनकी दृष्टि कातर है तथापि दयावती देवीकी अत्युज्ज्वल स्निग्ध दृष्टिकी तरह स्नेह और करुणासे परिपूर्ण है। कभी कभी उस दृष्टिमे विरक्ति और अभिमानकी थोड़ी झलक आ जाती है। रामचन्द्रजीके विषण्ण और उदास मुखकी ओर :एक एक बार वह दृष्टि फिरती है; मानों दयासे पिघल अपने आपको भूल, दृष्टिकी अचिन्तनीय और अव्यक्त भाषामे वह कह रही हैं "हाय राम! तुम मुझे पहचान न सके! हा हृदयवल्लभ! जीवन-सर्वस्व! तुम इतने बड़े मार्मिक पुरुष और हृदयकी बातोंके परखनहार अन्तर्यामी होते हुए भी अपनी चिरसंगिनीके हृदयको तौलकर देखनेमें समर्थ नहीं हुए।

आज लङ्काके भीषण समरका अन्त हो गया। आज जय जयकारके साथ विजयोत्सव मनानेका शुभ अवसर आया है, पर इसके विपरीत आज सभी किस अचिन्तनीय शोकसागरमें गोते लगा रहे हैं? आज सभी विषण्ण क्यों हैं? अत्याचारी रावण जो देवताओंके लिये भी दुराधर्ष और अजेय था, जो दक्षिण भारतके लिये कण्टक या यों कहिये कि सभी अनर्थोंका मूल कारण था आज सपरिवार मारा जायगा तथा विश्वविजयी,

दुर्भेद्य प्राचीर-परिवेष्ठिता, वीर-हुंकार-निनादिता लङ्का श्रीराम-चन्द्रजीके पैरोतले लुढ़केगी, लंका आज वीरशून्य हो जायगी, किसीने इसकी आशा की थी? किसने सोचा था कि ललनायें और जङ्गलोंके ऋषिमुनि अब निर्भय होकर रहेंगे? आज वही दुष्ट नराधम रावण रामचन्द्रजीके बाणोंसे विद्ध होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ है और उसका लंकाका राज्य भारत साम्राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ है। लङ्काकी धन-सम्पदा सती साध्वी जानकी-जीके शापानलमें भस्म होकर मानों संसारको विस्मित कर रही है; तथापि किसीके चेहरेपर हंसी नहीं है। कोई श्रीरामचन्द्रजी-का अभिनन्दन नहीं करता और न कोई जानकीजीकी वंदना ही कर रहा है। इसका कारण क्या है?

कारण सुनने योग्य नहीं, उसका उल्लेख करनेसे भी पाप लगेगा। कारण है जानकीजीके चरित्रकी पवित्रताकी परख करना अर्थात् जिस जानकीके जन्मसे संसार पवित्र हो गया है, जिनकी चरित्र-शक्तिके अलौकिक प्रभावसे कविके काव्यमें अमृत-की धारा बह गयी है, मनुष्य-समाजके करोड़ों स्त्री-पुरुष जिनकी स्वर्गीय पवित्रताका अमृतरस पीकर साधारण ऊंचाईसे सैकड़ों हाथ ऊंचे उठ गये हैं, और जिनके नाममात्रके उच्चारणसे प्राणियोंके पाप जलकर भस्म हो जाते हैं, उन्हीं ज्योतिर्मय पुण्यश्लोका जनकतनयाकी आज अग्नि-परीक्षा है।

एक अर्थमें, पदोन्नति और जीवनको उन्नत बनानेमें अग्नि-परीक्षाकी अपरिहार्य आवश्यकता है। जैसे सोनाको बिना

तपाये या विना उसकी जांच किये भूषण नहीं बनाया जाता, उसी प्रकार जो समाजमें सोना है—हृदयकी उच्चता और उदारता तथा चरित्रकी महत्तामें जो शीर्ष स्थानीय हैं—उनकी जबतक अच्छी तरह परीक्षा न होती, वे संसारके पथप्रदर्शक और आदर्श नहीं बन सकते। वास्तवमें जो लोग मनुष्य-समाजमें किसी न किसी अंशमें श्रेष्ठ हैं, जो ज्ञान, गुण, प्रतिभा, ज्योति, प्रतिष्ठा, गौरव अथवा जीवनके नित्य नैमित्तिक पवित्र अनुष्ठानोंमें सर्वसाधारणसे कुछ भी ऊपर हैं, उनमेंसे कोई भी सुखशय्यापर आरामकी नींद नहीं सोता, कोई भी अपना जीवन हंसी खेलमें नहीं विता देता। उनमें सभीको कठिन अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है। कही तो उन्हें जीवनकी क्षुद्रता, कहीं निम्न श्रेणीके मनुष्योंके ईर्ष्या द्वेष, कहीं आकस्मिक विपत्ति और कहीं दैवी दुर्घटनामें परीक्षा देनी पड़ती है। उनमेंसे किसी किसीको अग्नि-परीक्षामें अहोरात्र जलते रहना पड़ता है। वे अपने आप दुःख सहन करते हुए मनुष्य-जातिको शापके बदले आशीर्वाद देकर मनुष्यत्वकी महिमा बढ़ाते हैं।

इसका साक्षी इतिहास है। इतिहासके पहले परिच्छेदसे वर्तमान अध्यायतक पन्ने पन्ने सतर सतरमें वही एक बात मुख्य रूपसे उल्लिखित है। यूरोपके साहित्य और सभ्यताके जन्मदाता प्रतिभाशाली होमर हैं और सूक्ष्म तत्त्वकी सर्व प्रथम प्रतिष्ठा करनेवाले लोकहितैषी आनन्द-मूर्त्ति सोक्रेटिस हैं। यद्यपि यूरोप आज नानाविध सारस्वत-वैभवके लिये पृथ्वीका

आदर्श स्थान अधिकार किये हुए है तथापि आज भी होमर और सोक्रेटिसके नाम उनके सभी वैभवोंके ऊपर मणि मुक्ताओंके समान शोभा पा रहे हैं। किन्तु पृथ्वीके न्यायकी वलिहारी है! जिन दो महात्माओंके नामोंकी महत्ताका यूरोपको इतना गर्व और आदर है, उनमेंसे एक अर्थात् कविगुरु होमर देशवासियोंके द्वार द्वार भिखमंगेकी तरह मुट्ठीभर अन्नके लिये मारे मारे फिरे और किसी तरह अपने दुर्वह जीवनका अन्त किया और दूसरे अर्थात् ज्ञानाचार्य्य सोक्रेटिसको कई एक बुद्धिहीन मूर्ख सोहदोंके ईर्षा-पूर्ण अन्यायके कारण विष खाकर शरीर त्याग करना पड़ा।

फ्रांसीसी जातिका राजनीतिक इतिहास आदिसे अन्ततक अन्याय, अत्याचार, प्रजाके हाहाकार और पाशविक इन्द्रिय-लोलुपताकी उन्मत्ततासे भरा हुआ है। जिन्होंने राजशक्ति पाकर फ्रांसीसी जातिके राजसिंहासनको अलंकृत अथवा अपमानित किया है उन्होंने भोग-विलासके लिये कोई दुष्कर्म उठा नहीं रखा है और प्रजा-पीड़नके लिये कोई पाप करनेसे बाज नहीं आये हैं। गांवोंके कुत्ते बकरी और जंगलोंके सांप भालू भी उनकी तुलनामें कहीं कोमल स्वभावके हैं।

फ्रांसके ऐसे सम्राट और सम्राज्ञियोंने (सम्राटोंमें चार्ल्स*हेनरी

* रत्नगर्भा (!) कैथारिनाके दूसरे लड़केका नाम चार्ल्स नवम था। कैथारिना अपने शत्रुओंको विषप्रयोग द्वारा मार डाला करती थी। पुत्र चार्ल्स उसकी अपेक्षा कुछ कोमल स्वभावका था। वह अतिथियोंको निमत्रण देकर घर बुलाता और उन्हें गोलियोंसे मारकर खुशीके मारे खिल खिलाकर हस पड़ता था। परन्तु ऐसा होते हुए भी ये लोग रोमके टाइबिरियस इत्यादि सम्राटोंकी अपेक्षा ऊंची श्रेणीके जीवथे।

और चौदहवें लूई तथा सम्राज्ञियोंमें मारगारिटा और कैथारिना-का नाम विशेष उल्लेखनीय है) सोनेकी अट्टालिकाओंमें सैकड़ों दास दासियोंसे परिवेष्टित रहकर सुहागकी शय्यापर ऐशो-आरामकी जिन्दगी बितायी है और वैभवका डंका बजाकर चले गये हैं, परन्तु जिस राजदम्पतिने प्रजाकी भलाई करना ही अपने पार्थिव जीवनका एकमात्र लक्ष्य बना लिया था और दीन-दुखियोंके दुःखकी बात सुनकर जिनकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह जाती थी और उनका दुःख दूर करनेके लिये तुरत तत्पर हो जाते थे, ऐसे साधु स्वभाववाले सोलहवें लूई और कोमलताकी मूर्त्ति मेराया एन्टानेटाका सारा जीवन दुस्सह दुःख और यन्त्रणामें बीता और सारे जीवनकी चरम सीमापर पहुंचकर अन्तमें पुत्र-तुल्य प्रजाके प्रति अपने उदार विचारोंके कारण पशुकी तरह मारे गये।

इसीलिये हमने कहा है कि जो मानव-समाजमें भूषण-स्वरूप हैं, उनके लिये अग्निपरीक्षा अवश्यम्भावी है। अग्निपरीक्षा-का यदि यह अर्थ लिया जाय तो जानकीजीका अमृत सदृश मधुर जीवन आदिसे अन्ततक लगातार कठोर परीक्षाका जीवन है। जानकीजीने जन्मसे ही माताका मुख नहीं देखा, माताकी गोदमें बैठकर आत्माको शीतल नहीं किया और न माताका दुग्ध पानकर अपनी प्यासको बुझाया था; तथापि अपने चरित्रकी प्राकृत मधुरता और स्वाभाविक विकासके कारण सभी प्रकारके कोमल, मधुर और पवित्र गुणोंसे परिपूर्ण होकर स्त्री-

जातिके शीर्षस्थानपर विराजमान हुई हैं। उनकी मां न ।
वे सहिष्णुताकी प्रतिमूर्त्ति धरित्री देवीको ही माता समझ-
कर उनकी पूजा करके अपने आप पृथ्वीके समस्त प्राणियोंकी
माता बन गयी हैं, यह सामान्य परीक्षा नहीं है।

दूसरी परीक्षा हुई है जानकीजीके पिताकी धनुष तोड़नेकी
प्रतिज्ञाके समय। बालिकायें नव यौवनकी पहली लहरके समय
आशानुरूप वर और ईप्सित विवाहकी बात सोचकर जो आनन्द
और सुख पाती हैं, उसे कहना व्यर्थ है। इसके विपरीत जानकीजी
आनन्द और उल्लासके बदले रातदिन दुश्चिन्ताकी अग्निमें जलती
रही है और अपने उच्च चरित्रके अनुरूप पति मिलनेके लिये
प्रार्थना करती हुई ईश्वरकी ओर दृष्टि लगाये दिन काटती रही
हैं। उनके असाधारण रूपकी बातकर मिथिलाके उत्तर, दक्षिण,
पूरब, पश्चिम सभी दिशाओंसे वीर लोग वीर वेषमें उनके पिताके
यहां आये हैं। भाग्यके फेरसे वह किसके हाथमें पड़ेंगी और
किस पापी दुराचारीकी सेवा इन्हे करनी पड़ेगी, इस बातकी
चर्चा सभी जगह हो रही है। किन्तु स्वर्णप्रतिमा जानकीजी इस
परीक्षामें सफल हुई हैं—अपनी हृदय-शक्तिके अतर्कित आकर्षणके
कारण लोकाभिराम श्रीरामचन्द्रकी संगिनी बनकर पिता और
बन्धु-बान्धवोंके मनोरथोंको सफल करनेमें सफल हुई हैं।

जानकीजीकी तीसरी परीक्षा अभिषेकके उत्सवके समय
हुई। राजाधिराज दशरथ रामचन्द्रजीको युवराजके पदपर अभि-
षिक्त करेंगे और जानकीजी युवराज्ञी होंगी—उस समयके भारतके

राजसिंहासनपर रामचन्द्रजीकी बायीं ओर बैठेंगी। जानकीजीका क्या ही सौभाग्य है! जानकीजीके इस अचिन्तनीय सौभाग्यके कारण अयोध्याके घर घरमें आनन्दकी बधाई हो रही है, समान उम्रकी सखियोंमें मीठी और रसीली हँसी मसखरी हो रही है। इधर जानकीजीका जगत-हितकारक सौभाग्य उन्हें जटावल्कल-धारी श्रीरामचन्द्रजीके साथ दण्डकारण्यके दुर्गमपथमें ले जा रहा है। यह क्या साधारण परीक्षा है?

जानकीजी यदि चाहती, यदि संसारकी और बालिकाओंकी तरह संसारिक सुखकी पूजा करना जानतीं, तो वह सासुओं और हितैषियोंकी बात रख सकती थीं और अनायास अयोध्यामें रहकर राजप्रासादमें सुख और सौभाग्यका जीवन बिता सकती थीं। परन्तु उनके समान आदर्श स्त्रीके लिये यह कदापि सम्भव नहीं था। वह संसारकी असंख्यों अबला, पति-प्राणा, प्रेममयी सतियोंको आदर्श जीवनकी शिक्षा देनेके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुई थीं। अतएव उनके जीवनमें राजप्रासादमें रहनेका सुख कैसे प्राप्त होगा?

उन्होंने पतिके साथ वन जाकर दिखला दिया कि सुख-सौभाग्यमें पली हुई एक सुन्दरी रमणी पति-प्रेमको पूरा करनेके लिये किस तरह पृथ्वीके सभी वैभवोंको तृणवत् पैरोंतले ठुकरा दे सकती है और उन्होंने अपने इस महान् उच्चादर्शसे दृढ़प्रतिज्ञ, धर्मभीरु, पुण्यव्रती, पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजीको भी विस्मित कर दिया।

उस समय एक ओर भारतकी राजधानी अयोध्याका अतुलनीय वैभव और भोग-विलासका प्रचुर भाण्डार है और दूसरी ओर जानकीजीका प्रेममय प्राण है; एक ओर कुलगुरु वशिष्ठ, देवी अरुन्धती, सास, ससुर और सखियोंका अनुरोध-उपरोध है और दूसरी ओर जानकीका प्रेममय प्राण है; एक ओर असंख्यों दास दासियोंका विलाप और असंख्यों अनुरक्त प्रजाका हाहाकार और आरजू-मिनती है और दूसरी ओर जानकीका प्रेममय प्राण है; एक ओर सर्पों, नरमांस-भोजी पशुओं, कंकरों और कांटोंसे भरे हुए दुर्गम वनकी विभीषिका और वृक्षोंके नीचे घास-फूसकी शय्या और वन-जीवनका भयङ्कर और रूखा चित्र है और दूसरी ओर जानकीका प्रेममय प्राण है; किन्तु पृथ्वीके उस अश्रुत-पूर्व हृदयकी भयंकर परीक्षामें उन्होंने संसारके सभी वैभवोंको तिरस्कृत और अपमानित कर ठुकरा दिया। उनके प्रेममय प्राणने सैकड़ों चन्द्रोंकी भांति उज्ज्वल, शीतल कान्ति लिये हुए उद्भासित होकर पृथ्वीके असंख्यों स्त्री-पुरुषोंको प्रेमका अतुलनीय सौन्दर्य्य दिखला दिया।

जब माता कौशल्या आदि सभी माननीय गुरुजन जानकी-जीको वन जानेके संकल्पसे रोकनेकी चेष्टा करके हार गये, तब स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने उनके कमलवत् कोमल हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर उन्हे बहुत कुछ समझाया-बुझाया, भय दिखलाया, भावी सुख-सम्पद्का चित्र खींचा और प्रेमकी बातें कहकर

उन्हें दिलासा देना चाहा, परन्तु जानकीजी इससे मस न हुईं। जो जानकी लज्जावती लताकी तरह लज्जासे सदा सकुची रहती थीं, रामचन्द्रजीकी ओर आंखें उठा करके बोलनेमें जो लज्जासे मानों गड़ जाती थीं, जो प्रेममुग्ध युवतियोंकी तरह प्रेमके आमोद-प्रमोदकी बातोंको छोड़ और किसी प्रसंगपर अपने प्राण-प्रिय पतिसे बातचीत करना पसन्द ही नहीं करती थीं, आज वही जानकी गुरुजनोंके सामने, लजीली बालिका होते हुए भी, अस्सी वर्षकी वृद्ध तपस्विनीकी भांति सभीको पातिव्रत धर्मका सार तत्व समझा रही हैं। आज उन्होंने प्रसंग-क्रमसे अपने अन्तर्निहित प्रेमके पवित्र रहस्यको व्यक्त करके आदर्श सती अरुन्धतीको भी भक्ति और विस्मयसे सिर नवानेके लिये बाध्य किया है।

जानकीजीकी अग्निपरीक्षाके रहस्यको समझनेके लिये ऐतिहासिक काव्यके इस प्रसंगके चित्रको ध्यानपूर्वक पढ़नेकी आवश्यकता है। जानकीजीके मुखसे इस अवसरपर जो बातें निकली हैं, उन्हें सभी स्त्रियोंको सदाके लिये अपने हृदयमें रख लेना चाहिये। जानकीजी किस प्रकृतिकी स्त्री हैं, वह कैसा हृदय लेकर पृथ्वीपर अवतीर्ण हुई थीं और वह अपने प्रेम और भक्तिके इष्टदेव प्राणाराध्य रामचन्द्रजीको कितनी श्रद्धा और प्यार करती थीं इत्यादि बातोंको थोड़ा बहुत समझे बिना उनकी अग्निपरीक्षाका गूढ़ रहस्य समझमें नहीं आ सकता। जानकीजी कहती हैं:—

"प्रभो! पिता, माता, पुत्र, कन्या, प्यारी सखियां अथवा अपना प्राण भी, पति-प्राणा स्त्रीके लिये, पतिकी तुलनामें कुछ नहीं*क्योंकि क्या इहलोक क्या परलोक सभी जगह पति ही स्त्रीका एकमात्र भरोसा है; अतएव यदि तुम आज ही वनवासी होकर दुर्गम वनमें प्रवेश करो तो मैं भी तुम्हारे रास्तेके कुशकांटों-को कुचलती हुई तुम्हारे आगे आगे चलूंगी। मैं तुम्हारी बात

" न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखी जना,
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ।
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव,
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ।
ईर्षारोषौ बहिष्कृत्य पीतशेषमिवोदकम्,
नय मां वीर विश्रब्धः पापं मयि न विद्यते ।
सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः,
अचिन्तयन्ती त्रीन् लोकान् चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ।
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी
सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगंधिषु ।
साहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः,
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सह ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि,
इच्छामि सरितः शैलान् पल्वलानि सरांसि च ।
सह त्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनन्दिनी,
एवं वर्षसहस्राणि शतं वापि त्वया सह ।"

(अयोध्याकाण्ड २८ सर्ग)

अनुवाद जितनेका किया गया है उसके सभी मूल अंशको यहां स्थानाभावके कार[illegible]त नहीं किया गया है।

न रख सकी इसके लिये मुझपर क्रोध न करना, विरक्त न होना। यात्री जैसे दूर देश जाते समय पानावशेष शीतल जलको आग्रहके साथ ले लेता है, उसी प्रकार तुम भी मुझे अपने साथ ले चलो। मैंने तो तुम्हारे निकट कोई अपराध नहीं किया है, फिर तुम क्यों मुझे घर छोड़कर अकेले वन जा रहे हो? मैं त्रैलोक्यका सुख-सम्पद् नहीं चाहती, मैं सिर्फ पतिके चरणोंकी सेवा और पातिव्रत धर्मका पालन करनेकी आकांक्षा रखती हूं। अपने पिताके राजभवनमें मैं जिस प्रकार सुखसे रहती थी, वैसे ही वनमें भी तुम्हारे साथ सुखसे रहूंगी और ब्रह्मचर्य्यका पालन करती हुई निरन्तर तुम्हारे चरणोंकी सेवा करती रहूंगी तथा वन्य फूलोंके सौरभसे तृप्त रहकर मैं तुम्हारे साथ जङ्गलों जङ्गलों घूमा करूंगी। अब तो तुमने मेरी बात समझ ली, मैं तुम्हारी वही जानकी हूं।"

"हे महाभाग, मैं अवश्य तुम्हारे साथ वन जाऊंगी। तुम किसी तरह मेरे इस पवित्र संकल्पमें बाधा नहीं दे सकते। तुम जिस प्रकार फलमूल खाकर जीवन निर्वाह करोगे मैं भी उसी प्रकार फलमूल खाकर तुम्हारे साथ साथ रहूंगी। मैं कभी किसी प्रकारके सुखकी अभिलाषा प्रकट करके तुम्हें कष्ट न दूंगी, किसी प्रकार भी मैं तुम्हारे दुःखका कारण और बोझ न बनूंगी। मैं तुम्हारे आगे आगे चलूंगी और तुम्हारे भोजनसे बचे हुए जूठनको ही खाकर सन्तुष्ट रहूंगी तथा वनकी नदियों और पहाड़ों......और वनके सरोवरोंके कलकल

करते हुए जल तरंगोंको देख देख सुखी होऊंगी। एक दो दिन नहीं, यदि तुम सैकड़ों हजारों वर्ष जंगलोंमें रहो तब भी मैं तुम्हारे साथ ही साथ जंगलोंमें रहूंगी और तुम्हारे साथ रह सकनेके कारण मुझे अकथनीय आनन्द मिलेगा।

"मेरा हृदय और प्राण, मेरा स्नेह, प्रीति और भक्ति, इस संसारमें एकमात्र तुम्हींमें निबद्ध है।* मैं तुम्हारे सिवा और किसीको जानती ही नहीं, तुम्हारे चरणोंका ध्यान करनेके सिवा और किसी काममें मुझे शान्ति ही नहीं मिलती; अतएव मैं विनती करती हूं कि मुझे छोड़ मत जाओ, मैं किसी तरह तुम्हारे कष्टका कारण नहीं होऊंगी। परन्तु यदि तुम मुझे अपने साथ न ले चलो, यदि मेरा तुमसे वियोग हो जाय, तो मैं अवश्य प्राण त्याग कर दूंगी। मैं जब तुम्हारे पीछे पीछे जाऊंगी तब वह वनपथ मेरे लिये विहार-शय्याकी तरह कोमल और सुखकर प्रतीत होगा, वनके कुश कतरे आदि कंटीली झाड़ियोंसे मुझे किसी प्रकार कष्ट न मिलेगा। मैं उन्हें रूईके कपड़े और मृग-चर्मके समान कोमल समझूंगी। वनमें यदि मैं तेज हवासे उड़ी हुई धूलसे ढक भी जाऊंगी तो मैं उस धूलि-पटलको चन्दनकी तरह शीतल समझकर उसका आदर करूंगी और

* अनन्यभावामनुरक्तचेतसां
त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम्।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां
नातो मया ते गुरुता भविष्यति॥
इत्यादिकानि।

वनमें जब तुम्हारे चरणोंके निकट घासोंसे भरी हुई भूमि-शय्यापर सोऊंगी, तब अयोध्याके राजमहलके पलंगको भी तुच्छ समझूंगी।"

"फिर भी कहती हूं, हे नाथ! मैं वनमें माता पिताके लिये विकल न होऊंगी और अयोध्याके राजप्रासादको भूलकर भी याद न करूंगी। मैं तुम्हे सच कहती हूं, तुम मेरे लिये कष्ट न पाओगे, तुम्हारा सहवास मेरे लिये साक्षात् स्वर्ग है। तुम्हारा वियोग ही मेरे लिये नरक है। * तुम यह समझकर प्रसन्न होओ और मुझे अपने साथ ले चलो। यदि तुम ऐसा न करोगे तो मैं आज ही विष खाकर इस शरीरका अन्त कर दूंगी। जो तुमसे विद्वेष करते हैं जानकी कभी उनके अधीन रहकर इस पृथ्वीपर नहीं रह सकती।"

दशरथ और रामकी अयोध्या उस समय पृथ्वीपर सर्वप्रधान नगरी थी और असंख्यो स्त्री-पुरुष वहां वास करते थे। अयोध्याके वृद्ध और युवा, शिक्षित और अशिक्षित तथा अयोध्याकी सौभाग्यवती तथा अनाथा सभी प्रकारकी स्त्रियां जानकीजीके त्यागमय अध्यवसायको देखकर विचार करने लगीं कि स्त्री-चरित्रका चरम उत्कर्ष कितना ऊंचा हो सकता है। जो स्वार्थ-

---

* यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना,
इति जानन् परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह।
अथ मामेवमव्यग्रां वनं नैव नयिष्यसे,
विषमद्यैव पास्यामि मा वशं द्विषतां गमम्।

सुखको ही संसारका सब कुछ समझती थीं वह भी क्षण भरके लिये अपने स्वार्थ-मोहको भूल गयीं। जानकीजीके ये वचन देवपूजाके निर्माल्य पुष्पकी भांति कालस्रोतमें बहते हुए संसारके असंख्यों काव्य और संगीतोंमें बिखर गये।

जानकीजीको चौथी परीक्षा चौदह वर्षके वनवासमें हुई थी। अयोध्यासे दण्डकारण्य और दण्डकारण्यसे दक्षिण पथमें कुश-कंटकमय दुर्गम बनोंके बीचसे पैदल जानेके लिये एक महीनेसे कम नहीं लग सकता और इस समय जंगल कहनेसे जो जंगल समझा जाता है उस समयके जंगल वैसेही न थे। किन्तु जानकीजीने जनक ऐसे राजाकी कन्या और दशरथ ऐसे राजाधिराजकी पुत्रवधू तथा भारत-साम्राज्यकी अधीश्वरी होते हुए भी केवल पतिप्रेमकी व्याकुलताके कारण इतने बड़े रास्तेको पैदल चलकर तै किया था। मार्गके कष्टसे अवसन्न हो जानेपर भी पतिके मुखको देखकर प्रफुल्लित रहती थीं, पैरमें कांटोंके गड़ जानेपर पीड़ाको हँसती हुई सह लेती थीं। वृक्षोंके नीचे कंकड़ीली जमीनपर सोकर भी अपने प्राणाधिक पतिको सदा प्रफुल्ल रखनेकी चेष्टा करती और गृह रहते समय अनेकों दास दासियोंको जितना करना सम्भव न था वह अकेली, उमरकी छोटी होते हुए भी, रात-दिन कठिन परिश्रम करके—दूरवर्त्ती गोदावरी नदीसे जलसे भरा हुआ घड़ा ले आकर, फूल चुनकर और फल तोडकर—थके हुए पतिदेवके पावोंको दबा राज्याधिकारसे वञ्चित और निर्वासित पतिके संतप्त प्राणको सुख-शान्तिसे शीतल बनाये रखती थीं।

इसपर भी वह जंगल कैसा है? जिन्होंने वाल्मीकिके महाकाव्य और प्रसिद्ध कवि भवभूतिके उत्तर-रामचरितको पढ़ा है—उत्तर-रामचरितके दण्डकारण्य इत्यादि पहाड़ों, नदियो और झरनोंसे भरे हुए उस विस्तीर्ण वनभूमिके विचित्र वर्णनको जिन्होंने पढ़ा है—वही जानकीजीके वनवास-दुःखका थोड़ा बहुत अनुमान कर सकते हैं। वनमें कहीं भूखे व्याघ्र भयङ्कर गर्जन करके सारे वन-प्रदेशको गुंजित कर रहे हैं, कहीं कहीं डरावने भालु दलके दल घूमते हुए वनैले जीवोंको भी सशंकित और संत्रस्त कर रहे हैं, कहीं बड़े बड़े अजगर अपनी श्वास-अग्निसे ऐसा दावानल उत्पन्न करते हैं जिससे वनका हराभरा शीतल श्यामल प्रदेश झुलस जाता है और कहीं विकराल शरीरवाले वनचर राक्षस हाथमें विषैले अस्त्र लेकर, मनुष्य मारनेकी इच्छासे सदा चारों ओर घूमा करते हैं। पतिप्राणा और प्रेमपरायणा जानकीजी निडर और निश्चिन्त मनसे रातदिन पतिकी सेवामें लगी रहती थी और पतिका मुख क्षण भरके लिये भी उदास देखतीं तो उसे प्रफुल्लित करनेके लिये मानों अपना हृदय-पटल खोलकर स्वामीके चरणोंतले फैला देतीं।

जानकीजीकी जीवनव्यापी अग्नि-परीक्षाका पांचवां परिच्छेद है रावणका अशोकवन। जो पलभरके लिये भी रामचन्द्रजीका विरह-दुःख न सह सकती थीं और जो रामचन्द्रजीको नेत्रोंसे दूर छोड़कर पित्रालय जानेमें भी आनन्द न पाती थीं, आज कहां है वह जानकी और कहां हैं उनके प्रेममय राम! उस समयकी

उनके मनकी अवस्था एक पुरानी कवितामें अच्छी तरह प्रकट हो गयी है। जानकीजी साधुमति विभीषणकी सहधर्म्मिणी सरमा-को सम्बोधन करके कहती हैं।

"हारो नारोपितः कण्ठे
मया विश्लेषभीरुणा
इदानीमावयोर्मध्ये
सरित्-सागर-भूधराः।"

"सखी, मैं कभी गलेमें हार नहीं पहनती थी कि कहीं रामके हृदयके साथ मेरे तृषातुर हृदयका किञ्चित् विच्छेद न हो जाय, इसी भयसे मैं हार पहनना पसंद नहीं करती थी। एक पतले तागेके समान हारसे जितना विच्छेद और अन्तर हो सकता है, मैं उसे भी सहन नहीं कर सकती थी। इस समय पृथ्वीके किस भागमें मेरे वह राम हैं और किस भागमे मैं हूं और हम दोनोंके बीच न जाने कितने सरिता, सागर और पर्वतोंका अन्तर है।"

जानकीजी रामके प्रेममें इतनी व्याकुल थीं सही, पर क्या फिर वह अपने प्राणाधिक रामचन्द्रजीके पदारविन्दका दर्शन कर सकेंगी? क्या फिर रामचन्द्रजीके साथ हृदयको शीतल करने-वाले प्रेमके अमृत-सागरमें हंसकी भांति गोते ले लेकर पृथ्वीके मनुष्योंको स्वर्गीय प्रेमकी प्रतिभा दिखलायेंगी? फिर क्या कभी समुद्रकी रेखा पार करके पुण्यमय भारतभूमिमें, भारतके स्वर्णसिंहासनपर रामचन्द्रजीकी वाईं ओर विराजेंगी और फिर

क्या कभी अयोध्यामें लौटकर अयोध्याकी अधिष्ठात्री देवीकी नाईं असंख्यों मनुष्योंका पालन तथा असंख्यों मनुष्योंके सुख-दुख और शान्तिकी व्यवस्था करके अपने परार्थ-जीवनको सफल करेंगी? मनमें अब वह आशा तो नहीं है। एकमात्र अपनी निर्मल, तेजोमय, ऊद्धर्वोन्मुख आत्माका अजेय बल अवशिष्ट रह गया है और रह गयी है अपनी हृदयनिहित देवदुर्लभ पवित्रता और पतिप्रेमका पुण्यमय अवलम्बन। किन्तु वह बल और अवलम्बन इतना अधिक है कि दुरात्मा लङ्कापतिके अशोक वनमें असहाय होती हुई भी अपने आप वह असीम सहाय और शौर्य्यसे सम्पन्न हैं, अकेली होती हुई भी अलौकिक शक्तिशालिनी देवीकी भांति सरमा और त्रिजटा इत्यादि अपने भक्तोंके सिवा और सभीके लिये चिन्तातीत हो गयी हैं।

विकराल दांतोंवाली डरावनी राक्षसियां जानकीजीको सदा घेरे रहती हैं, कभी कल्पनातीत भय दिखलातीं, कभी सुख-सम्पद्-का लालच दिखलाकर उन्हें लुभानेकी चेष्टा करती हैं। रावण स्वयं वहां बार बार आकर कभी हाथोंमें खड्ग लिये तर्जन गर्जन करता और कभी हाथ जोड़े सामने खड़े होकर लङ्काका साम्राज्य-सम्पद् जानकीजीके पैरोंपर उपहार देनेके लिये प्रार्थना करता है, किन्तु पतिप्राणा जानकीजीकी अत्यन्त उग्र तथा पवित्र दृष्टि, जलती हुई बिजलीकी तरह एक प्रकारकी लोकातीत शक्ति प्रकट करके सभीको सैकड़ों हाथ दूर किये रहती है। जो रावण पहले कहीं भी पराजित नहीं हुआ था, वह यहां सतीकी प्रदीप्त दृष्टिके

आगे एक तरहसे हार सा गया—क्रोध, दुःख और मनके क्षोभसे थर थर कांपने लगा। सतीके चरित्रकी अग्निपरीक्षा साहित्य-संसारमें सैकड़ों काव्योंमें वर्णित हुई है; परन्तु वैसे सभी काव्य जानकीके चरित्र-परीक्षारूप जगद्दुर्लभ देवकाव्यके निकट क्षण-भरके लिये टिमटिमाकर एक बार ही बुझ गये हैं। धन्य है भारतभूमि! धन्य है भारतीय आर्य्योंकी धर्ममयी सभ्यता! धन्य हैं भारतके आदि कवि वाल्मीकि तथा धन्य हैं काव्य और इतिहासकी चिराराध्य जगत्पावनी माता जानकी!!

जानकीजीके जीवनकी छठी परीक्षा आज समुद्रके तटपर स्वामीके सम्मुख हो रही है। यह परीक्षा रूपक नहीं, यह सर्वतो-भावेन और सभी प्रकारके अर्थोंमें यथार्थ अग्नि-परीक्षा है। जन्म-दुःखिनी जानकीजी दस मासतक रावणके अशोक वनमें मन और बुद्धिकी अचिन्तनीय और असह्य यन्त्रणासे दग्ध होकर तथा अत्यन्त भीषण चरित्रकी परीक्षामें अपनी अप्रतिहत आत्माकी शक्तिसे सिर्फ अपने चरित्रकी पवित्रताको बचाये रखकर पतिके सम्मुख आयी हैं। इतने दुःख और कष्टके बाद पति आज प्रेम भरी मीठी मीठी बातोंसे उनके हृदयको शीतल करेंगे, इसी आशाकी ओर दृष्टि लगाये खड़ी हुई हैं। किन्तु अकस्मात् यह क्या हुआ? वह सोचे बैठी हैं कि उनके प्राणाराम राम आज उन्हें नयनोंके जलसे नहलाकर निर्मल मुक्ताकी मालाकी तरह हृदयमें रख लेंगे; रामके उस प्रेमपूर्ण हृदयमें आज कहांसे, किस कारण यह दुर्दमनीय कठोर परिवर्त्तन संघटित हुआ है?

पतिप्राणा स्त्रियां इस पृथ्वीपर पुरुषोंके पापाचारके कारण समय समयपर अनेक प्रकारके दुःख भोगा करती हैं। किन्तु जानकीका आजका दुःख समुद्रसे भी गहरा तथा शैल-शिखर व्यापी दावानलसे भी दुर्निरीक्ष्य है। वह जिस पतिको अपने हृदयमें प्रेमके पवित्रतम आसनपर देवताकी नाईं प्रतिष्ठित करके अहोरात्र पूजा करती थीं, जिसको सदा अपने दूसरे प्राण अथवा दूसरी प्रतिमूर्त्ति समझकर निडर और निर्भर होकर विश्वासी समझती थीं और प्यार करती थीं वही पति आज उनके प्रतिकूल आचरण कर रहा है—वही राम आज उनके प्रतिकूल हैं, इसे जानकीजी कैसे समझेंगी और कैसे सहन कर सकेंगी ?

रामके इस आकस्मिक चित्त-परिवर्त्तनके दो कारण हो सकते हैं। एक कारण लौकिक है और दूसरा अलौकिक है। अलौकिक कारण है, भाग्यकी विधिलिपिं अर्थात् जो नीयति धीरे धीरे जानकीजीके विचित्र जीवनमे स्त्रीचरित्रके विभिन्न अलौकिक सौन्दर्य्योंको चित्रकी नाईं तहपर तह खोलकर दिखलाती रही है, उसी अबोध्य तथा कठोर नीयतिकी यह भाग्य-रेखा है जो स्त्री-चरित्रके पूर्ण सौन्दर्य्य अर्थात् सतीत्वके चरमोत्कर्षको दिखलानेके लिये रामचन्द्रजीकी मनोवृत्तिके रूपमे प्रकट हुई है। इस अलौकिक कारणका अर्थ समझ लेना सम्भव होते हुए भी सरल नहीं है।

लौकिक कारण है, विभीषण ऐसे वीर पुरुषकी समझकी भूल अथवा हृदयकी कमजोरी। महावीर पवनसुतने माता

जानकीजीको रावण की नगरीमें कई बार देखा है। पहला दर्शन हुआ है हरी हुई जानकीजीकी खोज करते समय और अंतिम दर्शन हुआ है रावणवध और लङ्का विजयके बाद। हनुमानजीने जब पहले पहल अशोकवनमें जानकीजीका दर्शन पाया तब उन्होंने जानकीजीकी उस समयकी मूर्त्ति देखकर उसको भक्तिसे गद्गद् होकर प्रणाम किया। एक-वस्त्रा, अलंकार-विहीना, असहाय रमणी आंसुओंकी धारायें वहा रही है। तथापि अपनी प्रदीप्त अग्निशिखाकी भांति अलौकिक तेजस्विताके प्रभावसे शस्त्रधारी रावणको भी सहमाकर अपने सतीत्वके दुराधर्ष सम्मानकी रक्षा कर रही हैं। इस मूर्त्तिको देखकर हनुमानजी दंग रह गये। हनुमानजीने जब रावणका मृत्यु-संवाद लेकर लङ्कामें प्रवेश किया उस समय भी क्या देखते हैं कि उनकी आराध्य देवी जनकनन्दिनी उसी प्रकार बैठी हुई हैं।

"ददर्श मृजयाहीनां सातङ्कामिव रोहिणीं
वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः समावृताम्।"

माताने स्नानतक भी नहीं किया है। रामको कब क्या होगा, इसी चिन्तासे सर्वदा सशंकित रहती हैं। शरीरकी सुध न लेनेके कारण वह धूलिधूसरित हो रहा है। वह वृक्षके नीचे आकाशसे गिरे हुए तारेकी नाईं निरानन्द बैठी हुई हैं; किन्तु वहां भी राक्षसियोंने चारों ओरसे उन्हें घेर रखा है। रामचन्द्रजी यदि स्वयं अशोक-वनमें आकर जानकीकी इस मूर्त्तिको देखते, उन्हें ले आनेके लिये किसी दूसरेको न भेजकर स्वयं वहां जाते

तो उनके मनमें कभी भी ऐसा विकार न होता। वह अवश्य भक्तिसे विह्वल होकर—उच्छ्वसित होकर—संसारकी आदर्श-रूपिणी इस सतीका उचित स्वागत करके अपने राम नामको सार्थक करते तथा इस प्रेममयीकी प्रेम-तपस्यासे अपने मनमें शान्ति-लाभ करते और हृदयको शीतल करते। किन्तु विधाता-की ऐसी इच्छा नहीं थी। उन्होंने विभीषणको इस कार्य्यमें नियुक्त किया और जानकीजीको नहला, शरीरमें दिव्य अंगराग लेपन कर और दिव्य भूषण पहनाकर अपने सामने लानेकी आज्ञा दी।

"दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम्।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम्॥"

रामचन्द्रजीके मनमें जो यह असंगत इच्छा उत्पन्न हुई और अनुचित शब्द निकले इसका कारण है भाग्यका खेल। और विभीषण जैसे बुद्धिमान और यथार्थ तथ्यको जाननेवाले धर्मात्मा पुरुष भी एक वार भी उस बातका प्रतिवाद न करके —उस आज्ञाके प्रत्युत्तरमें एक शब्द भी न कह करके—तुरत जानकीजीको अंगरागसे पवित्र करने और नाना प्रकारके उज्ज्वल वस्त्रोंसे सुसज्जित करनेके अभिप्रायसे अशोक वनको दौड़ गये; यह भी भाग्यका ही खेल था। परन्तु पतिप्राणा जानकीजी पहले पहल तो लंकाके आभूषणोंको छूनेके लिये राजी न हुई। जब विभीषणने आरजू-मिनती करके और समझा-बुझाकरके अंगाभरण धारण करनेके लिये अनुरोध किया तब जानकीजीने

साफ साफ कह दिया, "नहीं, मुझसे यह न हो सकेगा; मैं जिस वेषमें हूं उसी वेशमे पतिका दर्शन करूंगी—मैं अस्नात अवस्थामें ही रामचन्द्रजीके सम्मुख उपस्थित होऊंगी।"

"एवमुक्त्वा तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम्।
अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्त्तारं राक्षसेश्वर।"

किन्तु प्रभु-वाक्यपरायण मूर्ख विभीषण जानकीजीके मनोगत भावको समझ न सके अथवा समझनेके लिये चिन्ताकी उच्च चोटीतक पहुंचनेका उन्होंने अवसर ही न पाया। उन्होंने परिचारिकाओंको ताकीद करके जानकीको स्नान कराया और उसे रावणके गृहके रत्नजटित बहुमूल्य वस्त्रों और अलंकारोंसे सुसज्जित करके पालकीमें बैठा रामचन्द्रजीके पास ले चले।

जानकीजी अपनी स्वाभाविक सरलताके अनुसार, रामचन्द्रजीकी दर्शन-लालसाकी अतीव व्याकुलताके कारण दो एक बार आपत्ति करके ही चुप हो रहीं। उन्होंने फिर कुछ न विचारा। किन्तु उनकी पवित्र देह मानों आज दूसरेकी नासमझीके कारण लङ्काके पापार्जित वस्त्रको स्पर्श करके किञ्चित् अपवित्रसी हो गयी—मानों तुलसी, चन्दन और गंगाजल इत्यादिकी पूजाई देव-भोग्य सामग्री पापाचारीके व्यवहारसे कलंकित पङ्कको स्पर्श करके किञ्चित् दूषित हो गयी। जो चीज साधारण मनुष्यों-के शरीरको सहज ही सह्य हो सकती है वही असाधारण और उच्च श्रेणीके मनुष्योंके सूक्ष्म तन्तुओंवाले शरीरके लिये असह्य हो जाती है। लङ्काके समान पापपूर्ण स्थानके मणि

माणिक्य भी जानकीजीसे सहे नहीं गये, उसने मानों शुद्ध शरीरको किञ्चित् कलुषित कर दिया। जो जानकीजी दस मासतक रावणके बगीचेमें यदृच्छानुसार फल मूल खाकर जीवन-निर्वाह करती रही हैं और लङ्काका एक चित्ता तागा भी न छूकर अपने उसी मलिन वस्त्रमें शरीर ढके रही हैं, आज वही जानकी मानों विभीषणकी नासमझीके कारण राक्षसके उपचार और उपहारको ग्रहण करके देवताओंकी दृष्टिमें भी किञ्चिन्मात्र दूपित हो गयी हैं। इस प्रकार जब वह स्नान और अनुलेपन कर और अपूर्व वस्त्राभूपणसे सज-धजकरके तथा अपने अतुलनीय रूपसे दमकती हुई मूर्त्तिमयी कनक-दामिनीकी तरह रामचन्द्रजीके सामने आ खड़ी हुईं उस समय उनके रूपकी ज्योतिसे सारा जन-समाज मोहित और स्तम्भित हो गया सही, पर रामचन्द्रजीकी मनोवृत्ति और बुद्धि-विवेक सहसा एकदम अंधकारमें डूब गया। इस प्रकारकी अतुलनीय मूर्त्ति—असाधारण रूपवती रमणी—रावण जैसे दुराचारीके नगरमें रहकर अपनी पवित्रता बचाये रखनेमें समर्थ हुई हैं, इस विषयमें रामचन्द्जीके मनमें सहसा घोरतर सन्देह उत्पन्न हुआ। रामने जब विभीषणको अशोक-वाटिकामें भेजा, उस समय भी उनका मन जरा कलुपित था। उस सन्देहने अब बड़े डरावने मेघका रूप धारण करके उनकी मुखच्छविको ढक लिया। उनके स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे अब अग्निकी वर्षा होने लगी। रामचन्द्रजी जानकीजोकी ओर दृष्टिपात करके क्षणभर तक चुपचाप बैठे रहे,

फिर दो एक लम्बी सांसें खींचकर अपने हृदयकी दहकती विषाग्निको लगातार बाहर करने लगे और जानकीजीके प्रति मर्म-भेदी कठोर वाक्योंका प्रयोग करने लगे।

इस संसारमें जहां अमृत है वहीं विष है। पौराणिक कवियोंने इस तत्त्वके रहस्यक समझा था, इसीलिये उन्होने अगाध समुद्रसे पहले अमृत निकाला है, पीछे कालकूट विष निकाला है, किन्तु रामचन्द्रजीका हृदय सिर्फ प्रेम, भक्ति, स्नेह और दयाका अगाध समुद्र कहलाता है। नयनाभिराम श्रीराम-चन्द्रजीको जिसने एक बार अच्छी तरह देखा है वही चिर दिनके लिये उनका क्रीत दास बन गया है। श्रीरामचन्द्रजीने समाजके बहिर्भूत और अस्पृश्य निषाद-नायक गुह चाण्डालको भी प्रेमके आवेशमें गाढ़ आलिङ्गन करनेमें संकोच नहीं किया है और सभी अनर्थोंकी जड़, सभीके नाशका मूल कारण विमाताको भी उन्होंने स्नेहके शब्दोंमें सम्बोधन करनेमें कृपणता नहीं दिखलायी है। दीन-दुखी और भिक्षुकोंकी कौन कहे, अयोध्याके पशु-पक्षी भी मानों रामचन्द्रजीके गुणोंसे वशीभूत रहते थे। रामचन्द्रजी जिस मार्गसे चलते उस मार्गके बच्चेसे बूढ़ेतक सभी उनके नव दुर्वादल-के समान श्याम गात्र और शान्त-स्निग्ध नेत्रोंको देखकर अपने नेत्रों और प्राणोंको शीतल करते और क्षणभरके लिये एक प्रका-रके अलौकिक और अननुभूतपूर्व आनन्द-रसमें गोते लगाने लगते। रामचन्द्रजीके उसी हृदय—उसी शीतल अमृत समुद्र-से आज सहसा गरलोद्गार होगा, क्या किसीने इसका अनुमान किया

था? इसीलिये जो लोग चारों ओर खड़े हैं वे सभी उनके उस समयके चेहरेका तेवर देखकर, भय और दुःखसे व्याकुल हो रहे हैं और सोच रहे हैं कि "हाय! रामचन्द्रजीको क्या हो गया! जानकीजीपर यह कौनसा वज्रपात हुआ! राम जानकीके चिर-कीर्तित अमृतमय प्रेममें किसने कहांसे हलाहल मिला दिया!

उपस्थित दर्शकोंमें सुग्रीव, विभीषण, हनुमान आदि वीरोंने रामचन्द्रजीके चरित्रको कुछ समझा है सही पर, उन्होंने भी पूरी तरहसे समझनेका अवसर नहीं पाया। उनकी दृष्टिमें रामचन्द्रजी वीरोंमें वीर हैं—वीर-श्रेष्ठोंमें महावीर हैं—समरभूमिमें दुर्ज्जय, राजनीतिमें अत्यन्त नीतिकुशल होते हुए भी देवताओंकी तरह दयाधर्मकी मूर्त्तिस्वरूप हैं। किन्तु रामचन्द्रजी पौरुष और साहस, रणक्षेत्रके कठोर कार्यों तथा शत्रु-मित्रके शासन-पालनके निष्ठुर और कोमल दुष्कर धर्मोंमें असाधारण महिमामय और तेजस्वी पुरुष होते हुए भी उनके हृदयका आभ्यन्तरिक अंश कितना कोमल और प्रेममय था, इसे वह लोग नहीं जानते थे—अच्छी तरह नहीं समझ सकते थे। इसीसे वे लोग बिना कारण शुद्धाचारिणी जानकीके प्रति रामचन्द्रजीके ऐसे कठोर व्यवहारको देखकर अत्यन्त दुःखी हुए और एक तरहसे स्तम्भितसे हो गये।

परन्तु लक्ष्मणजीकी अवस्था बिलकुल भिन्न थी। लक्ष्मणजी भी दूसरोंहीकी तरह सदासे ही सब देखते आ रहे हैं और कानोसे सुनते आ रहे हैं परन्तु रामचन्द्रजीके आजके इस व्यवहारको देख-कर वे क्रोधसे एकबारगी जल उठे और उनकी आंखोंके सामने

अंधेरा छा गया, क्योंकि लक्ष्मणजी इस संसारमें यदि कुछ जानते थे तो वह रामचन्द्रजीका हृदय था, यदि किसी पदार्थकी पूजा करते थे तो वह पदार्थ रामचन्द्रजीका चरित्र था। लक्ष्मणने वेद-वेदान्त नहीं पढ़ा था। उन्होंने पढ़ा था केवल रामचन्द्रजीके लोकोत्तर जीवन-वृत्तान्तको। उन्होंने पिता माताकी भी उपासना नहीं की थी उन्होंने उपासना की थी सिर्फ रामचन्द्रजीके चरण-कमलोंकी। वह आज अपने उसी चिर-परिचित और चिरजीव-नाराधित रामचन्द्रजीको पहचानते हुए भी पहचान न सके। जो रामचन्द्र पृथ्वीकी सारी शक्ति और वैभव, कीर्ति और सम्मान एक ओर रखते तो पतिप्राणा पतिमय-जीविता जानकीको दूसरी ओर रखते, संसारकी सारी सुख-समृद्धिकी अपेक्षा जानकीको सहस्रो गुना अधिक समझते थे वही राम आज जानकीके विषयमें कालान्तक यमराजकी नाईं कठोर और भयङ्कर हो गये हैं, रामचन्द्रजीके इस अस्वाभाविक भावपरिवर्तनको लक्ष्मण किसी तरह सहन नहीं कर सकते हैं।

फिर भी लक्ष्मण जैसे रामचन्द्रको जानते थे ठीक वैसे ही रामचन्द्रजीके हृदय और शरीरके अर्धांश—प्रीति और पवित्रताकी साक्षात् मूर्त्ति—जानकीजीको भी जानते थे। जलती हुई आगकी लौमें धूआं उठनेके विषयमें धब्बा लगनेको वह सम्भव समझ सकते थे पर जगत्-पावनी जानकीके चरित्रके विषयमें स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर सकते थे कि उसमें तिलभर भी कलंक लग सकता है। उनकी दृष्टिमें जानकीजी शुद्धि और सौंदर्य्यकी मूर्त्तिमती

देवी हैं और उमरमें छोटी होती हुई भी चरित्र सम्पद्के कारण सुमित्राकी तरह पूजनीया माता हैं। उन्होंने जानकीजीके दोनों पैरोंको छोड़ अन्य किसी अङ्गको अपनी जिन्दगीमें देखा ही नहीं। रावण जब जानकीजीको हरण कर लिये जा रहा था उस समय जानकीजीने अपना जो वस्त्र गिरा दिया था उस वस्त्रके विषयमें जब रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे पूछा उस समय लक्ष्मणने कहा था, "माताके पांवोंके नूपुरको छोड और किसी आभूषणको मैं पहचान नहीं सकता*" आज उसी सर्वजनपूज्या और सर्व-विध सम्मानार्हा जानकीकी ऐसी लांच्छना देखकर वह मर्मान्तिक दुःखसे व्याकुल हो गये और आकाशके चन्द्र सूर्यको मन ही मन कोसने लगे। मनुष्य-जीवनके अस्तित्वमें ही उन्हें सन्देह हो गया।

*पृथ्वीके अनेकों धुरन्धर विद्वान् भारतीय सभ्यताको संसारकी आदि सभ्यता और सम्पूर्णरूपसे देव-सभ्यता कहकर इसकी प्रशंसा किया करते हैं। जो लोग इसमें विश्वास नहीं रखते, लक्ष्मणके मुखसे निकला हुआ निम्न लिखित श्लोक अवश्य ही उनके मनमें विस्मय और भक्ति उत्पन्न कर देगा। रामने जब लक्ष्मणको जानकीके गिराए हुए वस्त्रोंमेंसे केयूर और कुण्डल इत्यादि भूषणोंको पहचान लेनेको कहा तब लक्ष्मणने कहा था—

"नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।"

अर्थात् मैं इन केयूरोंको नहीं पहचानता ये हाथके अलंकार हैं। मैं इन कुण्डलोंको भी नहीं पहचान सकता क्योंकि ये कानके भूषण हैं। मैं तो सिर्फ पांवोंके दोनों नूपुरोंको पहचानता हूं, क्योंकि नित्यप्रति मैं माताके चरणोंको वन्दना किया करता था।

लक्ष्मण एक एक बार अपनी आंखोंके सामने रामचन्द्रजीकी उस समयकी मूर्त्तिको देखते और मानों सोचते थे,—"जिसे आज-तक दयाका सागर और महत्व तथा मधुरताका आदि स्थल समझकर पूजा करता आया हूं वही राम क्या मेरे सामने बैठे हैं? जिन्हें विवाहके दिनसे जानकीजीको दिनमें दश बार देखे विना चैन ही नहीं मिलता था और जानकीजीको यथार्थ ही जीवन-सर्वस्व समझकर जो व्याकुल होकर पूजते थे वही राम क्या मेरे सम्मुख बैठे हैं? जिन्होंने अयोध्याके राजभवन अथवा अत्यन्त दुर्गम दण्डकारण्यमें जानकीको अपने कोमल . . बाहुओंको छोड़ और किसी उपधानपर सिर रखने ही नहीं दिया और जानकीको आंखोंकी आड़ करके एक डग भी दूर हटाना पसन्द नहीं करते थे वही राम क्या मेरे सामने बैठे हैं? अधिक क्या, जो राम जानकीके विरहमें वन-मार्गों और गिरिशिलाओंपर व्याकुल होकर उन्मत्तकी भांति विलाप करते थे और वनके लता-वृक्षों और पशु-पक्षियोंको सम्बोधन कर अपने हृदयके दुःसह दुःख और मर्मान्तिक पीड़ाको प्रकट करते थे, वही राम क्या मेरे सम्मुख खड़े हैं?

इसी प्रकारकी अनेकों बातें लक्ष्मणको याद आयीं। लक्ष्मणका भ्रातृस्नेहाकुल और अनाविलकी नाईं धर्ममय उदार हृदय जलकर खाक होने लगा। वह पागलसे हो गये। श्रीरामचन्द्रजीने जानकीके परित्यक्त वस्त्रको देखकर क्षणभर संज्ञाशून्य रहनेके बाद फिर किस प्रकार करुण स्वरमें विलाप किया

था॥ वह बात लक्ष्मणको याद आयी। रामचन्द्रजी सुग्रीवके साथ मैत्री स्थापन करनेके बाद प्रस्रवण पर्वतके सुरम्य अधोभागमें कुन्द, कदम्ब, सिन्धुवार, शाल, शिरिष और मालती इत्यादि वनज पुष्पोंकी शोभा देखकर पुनः पुनः जानकीजीका नामोल्लेख करके कितनी ही बातें करते थे और वर्षाऋतुके आनेपर नव जलधरका गम्भीर गर्जन, मोरोंका कुहुक-रव और कोमल पंखरियोंवाली चिड़ियोंका मधुर कूंजन सुनकर जानकी की बातें कहते और विलाप करते थे। यही सब बातें लक्ष्मणको याद आयीं।

और समुद्र-तटकी एक चिरस्मरणीय बात उन्हें याद आयी। प्रेमावतार रामचन्द्रजीकी वह अपूर्व कहानी वाल्मीकिकी कृपासे प्रेमकी गाथाकी नाईं अब भी स्वर्णाक्षरोंमें लिखी हुई है और इस पृथ्वीपर जहां जो कोई प्रेमकी तपस्याके लिये दीक्षा लेता है यह कहानी उसके हृदयको अमृतकी धाराकी नाईं स्पर्श करती है। अतएव राम जानकीके प्रेम-यज्ञकी पूर्णाहुति देते समय उस कहानीका एक अक्षर भी छोड़ा नहीं जा सकता। हमने जानकीका पतिप्रेम कुछ कुछ समझा है, अब हमें समझ लेना चाहिये कि जानकीके प्रति रामचन्द्रका कैसा प्रेम था और यह भी अनुभव कर लेना चाहिये कि रामचन्द्रजी जानकीको दण्ड देकर अपनी आत्माको ही किस परिमाणमें पीड़ित कर रहे हैं।

॥ "हा प्रियेति रुदन् धैर्य्यमुत्सृज्य न्यपतत् क्षितौ।
हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलंकारमुत्तमम्।"

सन्ध्याका समय है। आकाशमें शरत्कालके चन्द्रमाकी चांदनी छिटक रही है। सामने उत्ताल तरंगोंवाला समुद्र लहरें मार रहा है और उसकी प्रत्येक लहरोंकी नील आभाके ऊपर चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब और ज्योत्स्ना क्रीड़ा कर रही है। रामचन्द्रजी साथकी सेनाको समुद्रके तटपर ठहरनेकी आज्ञा देकर आप महेन्द्र पर्वतके* शिखरपर जानकीके ध्यानमें अकेले बैठे हुए हैं और मानों लहरोंसे खेलती हुई चाँदनीके तरल सौन्दर्य्यको देखकर जानकीके रूपकी चन्द्रिकाको स्मरण कर रहे हैं। जानकीका उद्धार करनेके लिये किस प्रकार दुस्तर समुद्रको पार करेंगे, इसीको सोचते हुए लम्बी सांस ले रहे हैं। इस समय समुद्र मतवालेकी तरह एक एक बार अट्टहास्य कर उठता है, और दूरसे सायँ सायँका जो शब्द सुनायी दे रहा है उससे ऐसा मालूम पड़ता है, मानों समुद्र भी शोकसे विलाप कर रहा है।

"सागरञ्चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम्।
सागरञ्चाम्बरञ्चेति निर्व्विशेषमदृश्यत।"

रामचन्द्रजीको जान पड़ता है कि उनके सिरके ऊपर मेघोंसे ढका हुआ जो आकाश लटक रहा है वह भी एक महासमुद्र है, और आकाशकी छायासे ढका हुआ असीम समुद्र भी एक अधःक्षिप्त आकाश है। देखते २ रामचन्द्रजीका हृदय एकबारगी अवसन्न हो गया और समुद्रकी ठंढी वायुसे उनका सारा शरीर

* "महेन्द्रमथ संप्राप्य रामो राजीवलोचनः।
आरोह महाबाहुः शिखरम् द्रुमभूषितम्॥"

शिहर उठा। रामचन्द्रजीके सुख-दुःखके साथी, मित्र, सहायक और नित्यसेवक लक्ष्मण आड़में निकट ही बैठे हुए थे। लक्ष्मण समीप हैं, ऐसा समझकर रामचन्द्रजीने समुद्रकी हवाको सम्बोधन करके एक लम्बी सांस ली और ऊपर, एक बार चन्द्रमाकी ओर दृष्टि करके वाष्परुद्ध कण्ठसे बड़ी ही व्याकुलताके साथ कहने लगे—

वाहि वात यतः कान्ता, तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश।
त्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः॥"

"जाओ, हवा जाओ, जहां मेरे विरहसे शीर्ण दुस्सह दुःखसे व्याकुल मेरी प्राणप्यारी जानकी अकेली बैठी हुई हैं, धीरे धीरे बहती हुई एक बार वहां जाओ और उनके स्पर्शसे शीतल और सुगन्धपूर्ण होकर फिर मेरे पास लौटकर मुझे स्पर्श करो। तब तुम्हारे छूनेसे ही मैं उनके शरीरके स्पर्श करनेका अकथनीय आनन्द पा जाऊंगा और वह भी मेरी तरह आकाश और चन्द्रकी ओर दृष्टि लगाये हुए हैं; इसलिये इस चन्द्रमाको देखनेसे ही मैं उनको (सीताको) आंखोंके सामने देखनेका आनन्द उपभोग करूंगा।*

कहते कहते रामचन्द्रका अगाध हृदय उमड़ उठा। एक बार मालूम हुआ मानों समुद्रमें कूद पड़ेंगे—समुद्रकी प्रवाल शय्यापर अनन्तकालके लिये शयन करके अपने हृदयकी जलनको ठण्डी करेंगे। तत्पश्चात् एक ओर पुरुषार्थपूर्ण प्रतिहिंसा

*श्लोकका शब्दार्थ न देकर हमने सिर्फ भावानुवाद रख दिया है।

और दूसरी ओर जीवन-सर्वस्व जानकीको देखनेकी अतृप्त उत्कण्ठा दोनों ही हृदयमें फिर जाग उठी। रामने कहा, "इस प्रकारका व्यवहार मेरे ऐसे मनुष्यको नहीं शोभता—

"वह्वेतत्कायमानस्यं शक्यमेतेन जीवितुम्।
यदहं सा च वामोरुरेकां धरणिमाश्रितौ।"

मैं और मेरे हृदयकी जानकी दोनोंही एक ही पृथ्वीपर वास करते हैं, इसीसे मुझे इस समय सन्तोष होता है। मैं इसी बातको सोचकर और इसी प्रकार जानकीको हृदयमें अनुभव कर जीवन धारण करूंगा और जानकीका उद्धार करके संसारसे उऋण होऊंगा। निर्जल शस्य क्षेत्र समीपके जलपूर्ण भूमिके अन्तःस्स्रोतके संयोगसे जैसे गीला बना रहता है, उसी प्रकार मैं भी 'मेरी जानकी जीती हैं' इस धारणासे हृदयको शीतल बनाये रखकर अपना जीवन धारण करूंगा।

रामके मुखसे ऐसी और भी अनेकों बातें निकलीं। प्रत्येक बातका भावार्थ यही था कि रामका हृदय एक सुन्दर पिंजरा है और उस पिंजरेमें नित्य विचरण करनेवाली चिड़िया राममोहिनी जानकीजी हैं। रामचन्द्रका शरीर सभी प्रकारके पुरुषार्थ और शक्तिसे पूर्ण विकसित एक नक्षत्र है और उस नक्षत्रमें प्राण-देवी हैं पुण्यमयी जनकनन्दिनी। यों तो सभी सच्चरित्र मनुष्य अपनी जीवन-संगिनीको हृदयसे प्यार करते हैं, किन्तु जानकीके प्रति रामका प्रेम कुछ भिन्न प्रकारका था। उसमें प्रीति, भक्ति, हृदयका प्यार, प्रेमाकुल शरीरकी उत्तप्त लालसा अत्यन्त अधिक और

अच्छी तरह मिल जानेसे सदा एक विचित्र वस्तुकी नाईं विकसित रहती थी और जानकीजीके भौरोंकेसे काले केश, नीलकमलसे स्निग्ध नेत्र, लाल धकधक करते हुए दोनों होठोंसे लेकर शरीरके सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग सर्वदा ध्यानकी वस्तुकी नाईं रामके मानस-नेत्रोंमें वर्त्तमान रहते थे।

जानकीजी रावणके गृहमें रहती हैं; किन्तु रामकी आत्मा—रामका हृदय, मन और प्राण—मानो प्रेमके किसी अदृश्य और अलौकिक शक्तिके प्रभावसे सूक्ष्म शरीरी पदार्थकी नाईं सदा जानकीके पास रहते हैं। रामचन्द्रजीको दृढ़ विश्वास है कि उनकी प्रेमकी पुतली जनकसुता नवयुवती होती हुई भी देव-कन्याकी नाईं तेजस्विनी सती हैं और अपने सर्वोच्च सम्मान और सतीत्वकी रक्षाके लिये वे देवांगनाओंकी नाईं शक्तिशालिनी हैं। लंकामें तो एक ही रावण है, पर रामका यह दृढ़ विश्वास है कि यदि इस प्रकारके लाखों रावण मिलकर भय दिखलावें तो भी सती साध्वी जानकीकी स्वाभाविक तेजःशक्तिको विचलित नहीं कर सकते। रामचन्द्रजी इसी प्रकार सोचते सोचते लक्ष्मणकी ओर देखकर फिर वाष्पगद्गद्कण्ठ हो बोले।

मेरी वह असितापाङ्गी जानकी इस समय राक्षसके चंगुलमें पड़कर आर्त्तनाद कर रही हैं। हाय! मैं जिनका स्वामी हूं वह अनाथाकी नाईं सहायताके लिये पुकार रही हैं तौभी कोई उनका परित्राण करनेके लिये आगे नहीं बढ़ता। मैं इसे किस प्रकार सहन कर सकता हूं। वह राजर्षि जनककी कन्या राजा-

धिराज दशरथकी पुत्रवधू और मेरी प्राणाधार हैं। मेरी इस प्रकारकी जानकी राक्षसके दुर्वाच्य वाक्ययन्त्रणासे पीड़ित हो रही हैं, यह मुझसे कैसे सहा जा सकता है? शरत्कालकी चन्द्रकिरण जिस प्रकार नीले बादलोंके पर्देको भेदकर अपनी पूर्ण आभाके साथ चमकती है, उसी प्रकार जानकी भी दुर्द्धर्ष राक्षसोंको जीतकर अपनी स्वभावशुद्ध चरित्र-शक्तिसे दमकती हुई मुझे दर्शन देंगी। वह तो यों ही कृशाङ्गी हैं, तिसपर भी विदेशमें, भाग्यके फेरसे अनाहार और अन्तर्दाही शोकके कारण और भी कृश हो जायंगी! हाय! कब मैं उन सभी दुःखोंके मूल कारण महापापी रावणके वक्षःस्थलपर भीषण आघात कर पाऊंगा? कब मैं उस आघातसे रावणका वध करके सीताके हृदयको शीतल करूंगा? हाय! कब वह स्वर्गीय प्रतिमा देवी-स्वरूपा सती, मेरी जीवनमयी जानकी औत्सुक्यपूर्ण व्याकुलतासे मुझसे गले मिलकर और आनन्दाश्रु बहाकर हृदयको शीतल करेंगी? कब कितने दिनके बाद हृदय निहित शोक शल्यरूपी मलिन वस्त्रको शरीरसे उतारकर जानकीरूपी शुक्लाम्बरको धारण करूंगा?"*

रामचरितके ये सब चित्र और रामकी ये सब बातें लक्ष्मण-

---

* "कदा नु खलु मे साध्वी सीताऽमरसुतोपमा,
सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दज जलम्।
कदा शोकमिमं घोरं मैथिलीविप्रयोगजं,
सहसा विप्रमोक्ष्यामि वासः शुक्लेतरं यथा॥"

को एक एक करके स्मरण हो आयीं; और जो राम सचमुच गृहप्रतिष्ठित देवीकी नाईं जानकीकी पूजा करते थे, वही राम आज जानकीको पाप-स्पृष्ट निकृष्ट वस्तु समझकर असंख्यों मनुष्योंके सामने कटुवाक्योंसे जर्जरित करके उनका परित्याग कर रहे हैं, इस दृश्यको देखकर लक्ष्मणके हृदयमें एक प्रकारकी आगसी लग गयी। किन्तु राम पर्वतकी नाईं अटल हैं। उन्हे न दया आती है, न दुःख होता है, हृदयमें पूर्वसञ्चित प्रीतिका कण मात्र भी संचार नहीं होता। वह मानों अपने आपको एक-बारगी भूलकर और अपने जीवनकी आदिसे अन्ततककी सारी घटनाओंको विस्मृत करके नील कुञ्चित-कुन्तला रूपोज्ज्वला जानकीको एक एक बार कनखियोंसे देखते हैं और एक प्रकारके अचिन्तनीय क्रोधसे भस्म हो होकर जानकीसे कहते हैं।

"भद्रे! तुम जहां चाहो चली जाओ, अब तुम्हें मैं नहीं चाहता। नेत्र-रोग-ग्रसित मनुष्य जैसे दीपककी शिखाकी ओर ताक नहीं सकता, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी ओर दृष्टिपात नहीं कर सकता हूं। जिस स्त्रीने परवश होकर दूसरेके गृहमें वास किया है,उस स्त्रीको क्या कोई सत्कुलमें पैदा हुआ तपस्वी पुरुष पुरानी मित्रता और स्नेहके लालचसे ग्रहण कर सकता है? यह सभी जानते हैं कि रावण महापापी है। जब उसने पाप-दृष्टिसे तुम्हें देखा है, तब मैं एक उच्च कुलमें जन्मा हुआ तुम्हे फिर कैसे ग्रहण कर सकता हूं?"

राम, इन सब बातो और इनसे भी अधिक कठोर और

अकथ्य शब्दोंका प्रयोग कर जानकीजीके हृदयको विदीर्ण करने लगे और उस समय समुद्रके किनारे शब्दहीन—निस्पन्द जन-समुदायमें जितने प्रकारके मनुष्य खड़े थे, सभीको दुस्सह शोकसे व्याकुल करने लगे। किन्तु लक्ष्मण अब इस समय व्याकुल नहीं हैं। उनका हृदय थोड़ी देर पहले अत्यन्त विकल हो गया था पर वह व्याकुलता अब नहीं है। इस समय वह ध्यान लगाये योगीकी नाईं अपने आपमें मग्न हैं। उनके मुखकी कान्ति मलिन पड़ गयी है। मुख मानों फटा पड़ता है पर उससे बात नहीं निकलती। उन्हें देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि मानों ईश्वरके ध्यानमें लीन होकर उनका प्राणपखेरू इस संसारको त्यागकर उड़ गया।

यह कहना व्यर्थ है कि जानकीकी अवस्था इस समय बिल्कुल विचित्र है। जानकीजी अपने सतीत्व और पवि-त्रताकी रक्षा करनेमें स्वर्गीय वीराङ्गनाकी नाईं तेजस्वी स्त्री होती हुई भी बचपनसे ही स्नेहशील, नम्रस्वभावा और कोमलांगी थीं। स्वामीके निकट वह सदा ही वृक्षसे लिपटी हुई सुन्दर लताकी नाईं रहती थीं। जबसे वह स्वामीके गृह आयी हैं सर्वदा ही स्वामीके स्नेह, आदर और हार्दिक प्रेमके सैकड़ों उपचारोंसे लालित-पालित हुई हैं। वह जैसे रामचन्द्रजीको संसारमें अद्वितीय वीर और महात्मा समझती थीं वैसे ही अपनेको भी रामचंद्रजीके हृदयकी उपयुक्त राजेश्वरी—रामचन्द्रके लिये उप-युक्त देवी—समझकर अपना आदर करती थीं। आत्मसम्मानका यह भाव पतिप्रेममें ही सीमित रहता था, कभी स्वामीको

अतिक्रमाकर अभिमानके रूपमें नहीं प्रकट होता था। इसका परिणाम यह होता कि जानकीके नेत्रोंमें कोई क्रोधकी झलक न देख पाता। जानकीका अमंगल चाहनेवाली स्त्रियां भी कभी उनके मुखसे कोई कड़ी बात सुनकर दुःखी न होतीं। आज इस जानकीके स्वभावमें क्षणभरके लिये एक विचित्र परिवर्त्तन दिखलायी पड़ा—जानकीजीने क्षणभरके लिये अपनी स्वाभाविक कोमलताको भूलकर एक गम्भीर भाव धारण किया, जो कड़ा तो न था पर कुछ उत्तेजित था, उसमें पूजाके योग्य अभिमानक तनिक स्वाभाविक झलक थी।

जानकीजो यदि चाहतीं तो श्रीरामचन्द्रजीको अनेकों कड़ी बातें कह सकती थीं। वह कह सकती थीं—"नाथ! तुम अयोध्याके राजसिंहासनसे वञ्चित होकर वनवासी हुए हो, इसमें तुम्हारी विमाताका दोष है न कि मेरा दोष है? तुमने वनवासके दिनोंमें मुझे ऋषि-तपस्वियोंके आश्रमके निकट—दीवारोंसे घिरी हुई किसी अच्छी कुटीमें, पहरुओंकी रखवालीमें न रखकर फूस फासकी कुटीमें—विना रक्षकके रखा था, इसमें तुम्हारा दोष है न कि मेरा? तुमने कुटिलस्वभावा शूर्पणखाका अपमान और खर दूषण इत्यादि राक्षसोंका वध करके लङ्काके पापी रावणको अपना जानी दुश्मन बना लिया था, इसमें तुम्हारा दोष है न कि मेरा? और तुम उस रावणका, मेरे हरणका संवाद सुनते ही समूल नाश करनेमें समर्थ नहीं हुए हो, इसमें तुम्हारा दोष है न कि मेरा?"

परन्तु जानकीने रामचन्द्रजीके प्रति कटु वचनके प्रत्युत्तरमें कटु वचनका व्यवहार नहीं किया। वह रामके उल्लिखित दुर्वचनोंको सुनकर पहले तो लज्जासे गड़ गयीं—पत्थर हो गयीं। रामचन्द्रजी इतने लोगोंके सामने, इस प्रकार जनतासे परिपूर्ण स्थानमें मुझे विषैले वाक्यशूलोंसे विद्ध करके मेरी और अपनी—दोनोंकी ही लाञ्छना कर रहे हैं, इस बातको सोचकर जानकीजी लज्जासे एकबारगी गड़ गयीं; मानों उन्होंने अपने शरीरमें अपने ही पैठकर लोगोंकी दृष्टि बचाकर छिप जाना चाहा।* इसके बाद थोड़ी देरतक वह करुण और अनुच्च स्वरमें रोती रहीं। जानकीजी पहले कभी रोयी न थीं। आज थोड़ी देरतक मनभरकर रोती रहीं। पिता जनक—वह शान्तिमूर्त्ति राजर्षि—तो उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। अयोध्यामें सास श्वसुरके कोमल मधुर लाड़-प्यारके सामने अपने पिताको याद करनेका अवसर ही नहीं पाती थीं और पतिके प्रेमके आगे उन्हें संसारकी कोई चिन्ता ही न थी। वह जिस रास्तेसे चली जाती थीं दास दासियां आगे आगे दौड़कर उस रास्तेसे कुश कांटोंको हटा देती थीं। अतएव अयोध्यामें कभी उनकी आंखोंसे एक बून्द आंसू भी न गिरा था। आज उनके खिले हुए नील कमल सदृश नेत्रोंसे लगातार आंसुओंकी वर्षा होती रही। उनके हृदयके राम—प्राणोंसे प्यारे राम—हृदयके आराध्य देव—उनके

* "प्रविशन्तीव गात्राणि स्वान्येव जनकात्मजा।
वाक्शरैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्त्तयत्॥"

पति—उनके हृदयकी हड्डी पसलीतकको स्वप्नातीत पाप शब्दोंसे जला जलाकर सभी लोगोंके सामने उनका परित्याग कर रहे हैं। इस अचिन्तनीय घटनाको देखकर उनका वक्ष:स्थल नेत्रोंकी अश्रुधारासे भीगता रहा। अग्निपरीक्षा और किसे कहते हैं? यही तो जानकीकी सहस्र अग्निपरीक्षा है। जब इस भीषण हृदय-दाह और निरन्तर अश्रुवर्षासे मन कुछ हलका हुआ, जानकीको जब ऐसा प्रतीत हो गया कि उनके पार्थिव-जीवनका अब अन्त हो गया—पृथ्वीपर उनका अब और कोई नहीं रह गया, तब उन्होंने आँचलसे आंसुओंको पोंछा और रामकी ओर देखकर गद्गद् कण्ठसे कहने लगीं।

"किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम्,
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव।
न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि,
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे।
पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशंकसे,
परित्यज्यैनां शङ्कान्तु यदि तेऽहं परीक्षिता।"

पाठक देखते हैं कि जो जानकी दण्डभरमें दस बार रामका नाम लेकर भी तृप्त न होती थीं, वह जानकी आज रामचन्द्रजीको केवल 'वीर' 'महाबाहो' आदि शब्दोंसे संबोधित कर रही हैं। रामकी रण-दुर्म्मद वीर-शक्तिपर ही दृष्टि रखकर सम्बोधन शब्दोंकी योजना कर रही हैं। एक बार भी अपने चिरपरिचित स्नेह, करुणा और महत्ताको सूचित करनेवाले किसी शब्दका

प्रयोग कर उनको दयासे पिघलानेकी चेष्टा नहीं करती हैं। यही स्नेह और कोमलताकी मूर्त्ति, जानकीके कोमल हृदयकी अन्तिम सीमा है—कटूक्तियोंकी पराकाष्ठा है। क्रोधकी एक और पहचान होती है। उपदेशकी गम्भीरतामें जानकी युवती होती हुई भी चरित्रकी दुर्निरीक्ष्य उच्चताके कारण इस समय वृद्धा तपस्विनी प्रतीत होती हैं। जानकीजी चाहती नहीं, तथापि उनकी असाधारण, अलौकिक और ऊर्ध्वचारी प्रकृति इस कठिन विपत्ति अथवा परीक्षाके समय स्वयं अपने उत्कर्षकी ऊंचीसे ऊंची चोटीपर पहुचकर रामको सम्बोधन करते समय समस्त संसारको ही मानों स्त्री-चरित्रके विषयमें शिक्षा दे रही है। जानकीजी कहती हैं—

"वीरवर! नीच जातिके पुरुष नीच जातिकी स्त्रियोंके प्रति जैसे कड़े शब्दोंका व्यवहार करते हैं तुम भी मेरे प्रति वैसे ही अयोग्य अश्रवणीय कड़े शब्दोंका व्यवहार करके क्यों आत्मनिग्रह कर रहे हो? तुम जैसी मुझे समझते हो मैं वैसी स्त्री नहीं हूं। चरित्रबलही मेरा एकमात्र भरोसा है। मैं अपने उसी चरित्रके नामसे शपथ कर कहती हूं कि मैं सम्मानयोग्य और सर्वथा विश्वसनीय हूं। तुम मेरा सम्मान और विश्वास करके मनमें शान्ति लाभ करो। तुम नीच प्रकृतिकी स्त्रियोंके चरित्रका विचार करके सारी स्त्रीजातिको ही एक समान समझे बैठे हो—स्त्रीजाति मात्रके चरित्रपर सन्देह कर रहे हो। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम यदि मुझे जानते हो, तुम्हारे सामने

यदि मेरी परीक्षा पहले भी हो चुकी हो तो अपनी यह शङ्का और सन्देह तुम एकबारगी त्याग दो।"

जानकी फिर कहती हैं—"तुम और मैं बहुत दिनोंतक एक साथ रहे हैं, बहुत दिनोंतक हमने एक दूसरेको अधिकाधिक अनुरागसे प्यार किया है। यदि इससे तुम मुझे अच्छी तरह न समझ सके हो तो, मैं योंही मर चुकी हूं, फिर दुहराकर मरना क्या है? तुमने जब महावीर हनुमानको मेरी खोज करनेके लिये लङ्कामें भेजा, तभी क्यों नहीं मेरे परित्यागका समाचार भेज दिया? ऐसा करनेसे मैं तो उसी समय इस प्राणको त्यागकर तुम्हारे सभी कष्टोंका अन्त कर दे सकती थी। तब इस प्रकार मेरा उद्धार कर तुमको अपना जीवन संकटमें डालकर व्यर्थ इतना कष्ट न उठाना पड़ता और न तुम्हारे इष्ट मित्रोंको इतना कष्ट उठाना पड़ता।

जिसके शरीर वा मनमें किसी प्रकारका पाप ढुका रहता है, उसका हृदय, विचारकर्त्ताके सम्मुख खड़े होनेपर, अपने आप काँपने लगता है—चेहरा पीला पड़ जाता है। जानकीजी भाग्यके फेरसे विपत्तिमें पड़ी थीं सही, पर उनका हृदय और मन सदा पर्वतके समान अटल अचल बना रहा, मुखश्री पवित्रताकी स्वाभाविक ज्योतिसे चमकती थी। उनके प्रत्येक वाक्य उपदेशपूर्ण थे, पर उनमें कातरताका लेश भी न था। रामचन्द्र अपनी राजशक्ति, पुरुषार्थपूर्ण कीर्ति और रणक्षेत्रकी शूरताके लिये चाहे कितने ही प्रसिद्ध क्यों न हों पर हृदयकी

उच्चता, उदारता, निष्कलङ्क प्रेमकी महत्तामें इस समय वह जानकीके सामने प्रभाहीनसे हो गये; क्योंकि रामका मन इस समय सन्देहके अन्धकारसे घिरा हुआ है, उनका प्रेम संसारकी घृणित नीतिके सामने हारकर कोंढ़ीसे झरे हुए फूलकी नाईं मुरझा गया है। पर जानकीका प्रेम उस घृणित नीतिको पांवो तले कुचलकर अपनी पूर्ण ज्योति और पुण्यमय परोपकारके साथ चमक उठा है। इसीलिये जानकीके मुखसे इस समय जो शब्द निकल रहें है, वे किसी दैवी शक्तिसे पूर्ण प्रतीत होते हैं। जानकीजी उन शब्दोंकी उदारता और गम्भीरतामें एक प्रकारसे आत्मविस्मृतसी होकर फिर बोली :—

"त्वया तु नृपशार्दूल रोषमेवानुवर्त्तता,
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्।
अपदेशो मे जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात्,
मम वृत्तञ्च वृत्तज्ञ वहु ते न पुरस्कृतम्।
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीड़ितः,
मम भक्तिश्च शीलञ्च सर्वन्ते पृष्ठतः कृतम्।"

अर्थात्—

"राजाधिराज! तुम्हारे लिये यह दुःखकी बात है कि तुमने नीच प्रकृतिके मनुष्यकी नाईं क्रोधके वशीभूत होकर मुझ सरीखी स्त्रीको साधारण श्रेणीकी स्त्रियोंके समान समझ लिया। तुम विचारवान मनुष्य हो, तथापि तुमने एक बार भी मेरी जाँच न करके—मेरा जानकी नाम इस संसारमे क्यो

इतना सम्मानित समझा जाता है, इसका एक बार भी विचार न करके—मेरे आदरणीय चरित्रकी उपेक्षा की है। और तुमने बचपनमें जो संकल्प करके मेरा पाणिग्रहण किया था, उसे और मेरी प्रीति,भक्ति आदि सभीको एक दम पैरोंतले ठुकरा दिया है।"

यह कहते कहते जानकीके शरीरसे एक प्रकारकी स्वर्गीय ज्योति प्रकट हो गयी और हृदयमें एक प्रकारकी अनिर्वचनीय दैवी शक्तिका संचार हुआ। वाष्पगद्गद् कण्ठसे जनकनन्दिनीने लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा, "सुमित्राकुमार !"—माता लक्ष्मी इस समय लक्ष्मणको भी देवर अथवा वत्स लक्ष्मण कहकर सम्बोधन नहीं करती हैं। लक्ष्मण भी मानों कोई अपरिचित हैं इसी कारण वह उन्हें इसप्रकार सम्बोधन कर रही हैं। वह कहती हैं "सुमित्राकुमार ! मेरी अन्तिम बात रखो। मेरे लिये अभी यहां एक चिता तैयार कर दो। चिताकी जलती हुई आग ही मेरे इस आकस्मिक दुःखका एक मात्र औषध है। मैं झूठा अपवाद सहकर क्षणभर भी जीवित रहना नहीं चाहती। पति मेरे व्यवहारोंसे सन्तुष्ट नहीं हैं। जब उन्होंने सबके सामने मेरा परित्याग कर दिया है, तब अग्निही मेरे लिये एकमात्र शरण है। मैं अग्निमें प्रवेश करके इस देहका अवसान करूंगी।"

हमने पहले ही कहा है कि लक्ष्मणजी इतनी देरतक ध्यानमें योगीकी तरह निश्चल होकर बैठे थे। जानकीकी आवाजसे सहसा उनका ध्यान भङ्ग हुआ। उन्होंने एकाएक होशमें आकर क्रोधसे नेत्रोंको तानकर रामचन्द्रजीकी ओर एक बार देखा और जानकी-

की अग्नि-परीक्षा ही रामके मनका संकल्प है, यह उनके रंग ढंगसे समझकर तुरत चिता तैयार की।

लोग मूर्त्तिका विसर्जन करते हैं नदी या समुद्रके जलमें; पर आज्ञाकारी लक्ष्मणने अयोध्याकी स्वर्ण-प्रतिमाको—रामचन्द्रजी-के हृदयकी अधिष्ठात्री देवीको—दूरवर्त्ती लङ्काके बाहरी दरवाजे-पर चिताकी अग्निमें विसर्ज्जन करनेके लिये शीघ्रताके साथ पूरी तैयारी कर ली। लक्ष्मणने क्या इस समय मिथिला और अयोध्याका स्मरण करनेका अवसर पाया था? हाय मिथिलाके वृद्ध राजा जनक! तुम इस समय कहां हो? तुम जिसे पलभर भी न देखनेसे संसारको सूना समझते थे, जिसको सन्तानके रूपमें पाकर अपनेको गौरवान्वित समझते थे, तुम्हारी वही हृदयकी जानकी आज सदाके लिये संसार त्याग करने जा रही है। तुम उसे एक बार देख भी न सके! और अयोध्याकी दुःखिनी महारानी माता कौशल्या! तुम इस समय कहां हो? तुम राम सरीखे पुत्रकी अपेक्षा भी जिस जानकीको अधिक प्यार करती थी—जिसके निर्मल और कोमल स्वभाव और सुन्दर मुखच्छविको देखकर संसारके सारे दुःखोको भूल जाती थी, तुम्हारी वही प्राणोंसे प्यारी पतोहू—तुम्हारे हृदयकी सम्पत्ति—आज चिताकी अग्निमें जीती हुई जल रही हैं! तुम एक बार उनके चन्द्रमुखके देखनेका भी अवसर न पा सकीं!

चिताकी अग्नि लहलहाकर जल उठी। चारों ओर जो लोग खड़े थे सभी धधकती आगकी लपकती लौकी ओर टकटकी

लगाकर देखते रहे। उन्होंने रामके क्रोधको इतनी देरतक साधारण मनुष्यके क्रोधके समान समझा था। रामने किस अभिप्रायसे जानकीके प्रति इस प्रकार क्रोधकी अग्निवर्षा की थी, इतनी देरके बाद उन लोगोंकी समझमें आया। किन्तु जानकीजी अपनी अन्तिम घड़ीके समय भी अपने चरित्रकी महत्ताके कारण धीर-स्थिर हैं और पतिप्राणा सतीके पातिव्रत्य धर्मपर अचल अटल हैं। रामने उनका परित्याग किया है, किन्तु उन्होंने रामका परित्याग नहीं किया है। उन्होंने, स्वामीको तजी हुई साधारण स्त्रियोंकी नाईं आगकी ओर न दौड़कर, दूरवर्त्ती तीर्थकी यात्रा करनेवाली तपस्विनीकी भांति, स्वामीकी बार बार भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा की और तत्पश्चात् अग्निकी प्रदक्षिणा करके धर्म और देवताओंके उद्देश्यसे ऊपर दृष्टि किये हुई हाथ जोड़कर कहने लगीं—

"यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पतिराघवात्,
तथा लोकस्य साक्षी माम् सर्वतः पातु पावकः।
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः,
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः।"

अर्थात्—

"यदि मेरा मन रघुकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजीसे क्षणभरके लिये भी विचलित न हुआ हो तो सभी लोकोंको साक्षी यह अग्नि सब तरहसे मेरी रक्षा करे।" माता जानकीने तब अग्निको साक्षी करके फिर कहा—

वचसि मनसि काये जागरे स्वप्नसंगे,
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि ।
तदिह दह ममाङ्गं पावनं पावकेदं,
सुकृतदुरितभाजां त्वं हि कर्मैकसाक्षी ।

अर्थात्—यदि मनसा, वाचा, कर्मणा मैं शुद्धाचारिणी न होऊं—यदि मैंने मन, वचन या शरीरसे स्वप्न या जाग्रत अवस्थामे कभी भी रामचन्द्रके सिवा किसीका भी पतिभावसे चिन्तन किया हो तो सभी जीवोंके पाप-पुण्यकी साक्षी यह अग्नि मेरे इस पाप-स्पृष्ट शरीरको अभी भस्म कर दे ।

जानकीजीने इस प्रकार क्रमसे तीन बार इन उल्लिखित शपथ-वाक्योंका उच्चारण करके अग्निदेवताका पूजन किया, फिर हृदय और मनमें एक बार भी विचलित अथवा भयभीत न होकर अग्निमें कूद पड़ी । जिस समय तप्त-सुवर्ण-वर्णवाली यह जगन्मोहिनी सुन्दरी देवी तप्त-सुवर्ण-सदृश भूषणसे सुसज्जित होकर अग्निके निकट उपस्थित हुईं, उस समय दर्शकमण्डलीने समझा था कि कोई स्वर्गदेवी पृथ्वीके पापके कारण स्वर्गसे पतित होकर नरकमें गिर रही है । किन्तु जानकीका कोमल शरीर—विकसित लावण्यकी वह प्रेम-मूर्त्ति—स्नेह, करुणा, महिमा और मधुरिमाकी वह मोहिनी मूर्त्ति—अग्निकी लपलपाती जीभमें ढक गयी—क्षणभरके लिये अदृश्य हो गयी । अग्निमें घी डाल देनेसे जैसे वह दहक उठती है उसी प्रकार उस अग्निकुण्डने जानकीको पाकर और भी जोर पकड़ लिया और उनके उज्ज्वल-

सित रूपको एकबारगी निगल गयो। स्त्रियोंने आर्त्तनाद कर रुदन करना आरम्भ कर दिया; बच्चे और बूढ़े जमीनपर लोट लोटकर चिल्लाने लगे और जिस विशाल जनसमूहको इतनी देर-तक निस्तब्ध और गम्भीर देखकर हमने आश्चर्य्य किया है वही अब विलाप, परिताप और हाहाकारके हृदय-विदारी गगनभेदी शब्दोंसे भयंकर बन गया।

आदिकवि वाल्मीकिसे लेकर भारतके अनेक कवियोंने ही जानकीके इस अग्नि-परीक्षाके वृत्तान्तको अपनी अपनी कवितामें वर्णन किया है। गोस्वामी तुलसीदासने भी इस प्रसंगका वर्णन करते हुए ऐसे मर्मस्पर्शी और तोले हुए शब्दोंमें यह चित्र खींचा है जिसे पढ़कर आंखोंसे आंसू निकल पड़ते हैं। उन्होंने लिखा है—

सुनि संदेस भानु-कुल-भूषन।
बोलि लिये जुवराज बिभीषन॥
मारुतसुतके संग सिधावहु।
सादर जनकसुतहिं लेइ आवहु॥
तुरतहिं सकल गये जहँ सीता।
सेवहिं सब निसिचरी बिनीता॥
बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखावा।
सादर तिन्ह सीतहिं अन्हवावा॥
बहु प्रकार भूषन पहिराये।
सिविका रुचिर साजि पुनि लाये॥

ता पर हरषि चढ़ी बैदेही।
सुमिरि राम सुख-धाम सनेही॥
बेत पानि रच्छक चहुं पासा।
चले सकल मन परम हुलासा॥
देखन भालु कीस सब आये।
रच्छक कोपि निवारन धाये॥
कह रघुबीर कहा मम मानहु।
सीतहिं सखा पियादे आनहु॥
देखहिं कपि जननीकी नाईं।
बिहँसि कहा रघुनाथ गुसाईं॥
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरखे।
नभतें सुरन्ह सुमन बहु बरखे॥
सीता प्रथम अनल महँ राखी।
प्रगट कीन्हि चह अन्तर साखी॥

दो०—तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुरबाद।
सुनत यातुधानी सब, लागीं करन बिषाद॥

प्रभुके बचन सीस धरि सीता।
बोली मन-क्रम-बचन पुनीता॥
लछिमन होहु धरम के नेगी।
पावक प्रकट करहु तुम्ह बेगी॥
सुनि लछिमन सीता कै बानी।
बिरह-बिबेक-धरम-जुति-सानी॥

लोचन सजल जोरि कर दोऊ।
प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥
देखि रामरुख लछिमन धाये।
पावक प्रगटि काठ बहु लाये॥
पावक प्रबल देखि वैदेही।
हृदय हरष कछु भय नहिं तेही॥
जौं मन बच क्रम मम उर माही।
तजि रघुबीर आन गति नाही॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना।
मो कहं होहु स्रिखंड समाना॥

स्री-खंड-सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस-वन्दित चरन रति अति निरमली॥
प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महं जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे सुरनभ सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥
धरि रूप पावक पानि गहि श्रीसत्य स्रुति जग विदित जो।
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहिं समरपी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव-नील-नीरज-निकट मानहुं कनक-पंकजकी कली॥

वाल्मीकिकी रामायणमें लिखा है कि रामचन्द्रजीके नेत्रोंसे आंसू टपक पड़े थे। रामचन्द्रजी जानकीके अग्निमे प्रवेश करते समय सिर झुकाये हुए चुपचाप बैठे थे, पर जब जानकीजी सच-मुच ही सहमृता सतीकी नाईं उठी हुई आगकी लहरमें कूद पड़ी

तब रामचन्द्रके धीरजको रस्सी टूट गयी। तब उनकी दोनों आंखोंसे आंसुओंकी धारा बड़े वेगसे बहने लगी। जानकी अब इस संसारमें नहीं हैं, इसे सोचकर वह अधीर हो उठे।

जानकीके लिये रामचन्द्रजीने जो शोक और व्याकुलता प्रकट की है, उसे पढ़कर सम्भवतः अनेकों स्त्रियां मनमें बहुत दुःखित होंगी। वह सम्भवतः श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष करके कह सकती हैं कि "तुम निर्दयी और निष्ठुर हो, जिसको तुमने कुछ क्षण पहले इतने तिरस्कारके साथ आहुतिकी तरह एक प्रकारसे आगमें झोंक दिया है, उसके लिये अब व्यर्थ इस तरह शोक और विलाप क्यो कर रहे हो?" रामके विषयमें ऐसी बातें कहना बिल्कुल असंगत है। भवभूतिके काव्यमें उल्लिखित वन तापसी वासन्ती श्रीरामचन्द्रजीको ऐसे ही दो चार शब्द कहकर दुःखके आवेशमें मूर्च्छित होकर गिर पड़ी थीं। वासन्ती कहती हैं, "राम! तुम्हीं न सदा जानकीकी ओर देखते हुए कहते थे कि—

> "त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
> त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे,
> इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
> तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण।"

अर्थात्—"तुम ही मेरी जान, तुम ही मेरा हृदय, तुम ही मेरी आंखोंकी चाँदनी (पुतली) हो, तुम मेरे शरीरमे शीतल अमृत हो। तुम्हीं न सैकड़ों मीठी मीठी बातें कहकर उस कोमल

स्वभाववाली अबलाको मुग्ध किये रहते थे ? क्या तुम वही राम हो ? इसकी चर्चा करना भी व्यर्थ है।"

परन्तु यही वासन्ती फिर अन्यत्र रामचरित्रमे या जानकीके प्रति जहां रामचन्द्रके प्रगाढ़ प्रेमकी अधीरताकी समालोचना करती हुई कहती हैं:—

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि,
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।"

हम भी यहां इसीलिये रामचन्द्रजीके चरित्रकी और अधिक समालोचना नही करना चाहते। हम वन-तापसी वासन्तीका पदानुसरण करके सिर्फ यही कहेंगे कि जो रामके समान लोकोत्तर पुरुष हैं उनके मन और चरित्र दोनोको समझना बहुत कठिन है। उनका हृदय एक ओर पुष्पके समान कोमल और दूसरी ओर वज्रके समान कठोर है। वह कब किस उद्देश्यसे कैसा काम करते हैं, इसे साधारण मनुष्य सोचकर हृदयंगम नहीं कर सकते। नहीं तो स्नेह और प्रेमके अगाध समुद्र श्रीरामचन्द्रज अपनी प्राणोंसे प्यारी जानकीको अग्निमें क्यों झोंक देते ? यह क्या कभी दूसरोंके किये सम्भव है ?

परन्तु राम यदि राम हैं तो जानकी भी किसी तरह कम नहीं। जानकीके पिताका नाम महात्मा जनक है। आप याज्ञवल्क्यके मेधावी शिष्य हैं। प्रातःस्मरणीय प्रतापशाली राजा होते हुए भी अपने जीवनकी अग्नितुल्य पवित्रताके कारण ऋषि-मुनियोंके लिये भी देवताके समान पूजनीय हो गये हैं। उन्होंने

जानकीकी अग्निपरीक्षाकी बात सुनकर एक बार कहा था—"वह अग्नि कौन है जो मेरी कन्याकी परीक्षा करेगी।* जानकी उसी जनककी शिष्या हैं, उन्हींकी देखरेखमें पाली पोसी गयी हैं और उन्हींसे जानकीने शिक्षा दीक्षा भी पायी है। रामचन्द्रजी जानकीके जनकजीके साथके सम्बन्धका उल्लेख करके बातचीत करनेमें अत्यन्त गर्व अनुभव करते थे और ऐसे पुण्यश्लोक तपःपूत महात्माकी कन्याका चरित्र संसारके लिये स्वभावतः कितना उच्च आदर्शस्वरूप होगा, इसे सोचकर जानकीको हृदयसे श्रद्धा करते थे। वास्तवमें रामचन्द्रजी चरित्रके कारण जिस प्रकार मनुष्यजातिके आराध्य देवकी संज्ञा पा गये हैं, उसी प्रकार, नहीं उससे भी अधिक, जानकीजी चरित्रकी पवित्रताके लिये स्त्रीजातिकी आदर्शस्वरूपा हो गयी हैं। उन्होंने जन्मग्रहण किया था, इसीलिये भारतभूमिका 'पुण्यभूमि' नाम अधिक सार्थक और उपयुक्त हो गया है, इसीलिये पृथ्वीका सारा स्त्री-समाज अपनेको श्रेष्ठ और सम्माननीय समझनेका अधिकारी हुआ है। जानकीजी रावणकी अशोकवाटिकामें अपनी अलौकिक और अजेय शक्तिके कारण ही अपनी रक्षा कर सकी थीं।† आज इस शपथ-परीक्षाके

---

* "आः कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने।"

† जो अलौकिक रहस्य-विज्ञान अर्थात् Occult Science के अच्छे जानकार हैं वे कहा करते हैं कि ससारके सभी पदार्थ—विशेष करके वे पदार्थ जिनमे प्राण हैं—अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओंके पर्देसे सदा ढके रहते हैं। वह

समय पृथ्वीकी साधारण अग्नि क्या उन्हें जला सकती है? यह कभी संभव नहीं।

रामचन्द्रजी जिस समय जानकीके शोकसे व्याकुल होकर अश्रुवर्षा कर रहे थे और दर्शकमण्डलीके सभी लोग जब रामचन्द्रजीको घेरकर या समुद्रतटके मैदानमें इधर उधर भटककर विलाप कर रहे थे, उस समय जानकीने अग्निकुण्डसे अक्षत शरीर निकलकर सामने खड़े हुए सभी लोगोंको विस्मय और हर्षसे दंग कर दिया। सभीने देखा कि अग्नि उन्हें छूतक नहीं गयी है। उसी समय कई एक देवता भी राम और लक्ष्मणकी नजरोंके सामने प्रकट होकर जानकीके अकलंकित चरित्रके विषयोंपर जयजयकार शब्द करके आनन्द प्रकट करने लगे। सभीको देखकर आश्चर्य हुआ कि जानकीके ललित और कोमल शरीरका

परमाणुओंका पर्दा शरीरके भीतरसे सैकड़ों रेखाओंके रूपमें निकलता है और फिर मण्डलाकार होकर उस शरीर अथवा शरीरी पदार्थको घेरे रहता है। उसका नाम अरा (aura) है। अङ्गरेजोका अरा शब्द संस्कृतके 'अर' शब्दसे निकला है या नहीं, पंडितलोग इसका विचार करेंगे। किन्तु 'अरा' शब्दकी अङ्गरेजी भाषामें निम्नलिखित रूपसे व्याख्या की जाती है :—
A subtile emanation proceeding from any thing, esp. that essence which is claimed to emanate from all living things and to afford an atmosphere for the operations of animal magnetism and such like occult phenomena
अध्यात्मवादियोंका दृढ़ विश्वास है कि जिस मनुष्यका हृदय जिस परिमाणमें उन्नत होगा और जिसका चरित्र जिस परिमाणमें पवित्र होगा उसके शरीरकी आवरणभूत तेजोमयी अध्यात्मशक्ति उसी

आगमें जलना तो दूर रहा, वह मानों अग्निमें स्नान करके और भी अधिक स्निग्ध और कान्तिमय हो गया है और उनके अङ्गाभरण वस्त्र और शिरोभूषण कुसुमदाम भी ज्योंका त्यों रह गया है। *

उन देवताओंमेंसे जो देवता उस अग्निमें प्रतिष्ठित थे—वाल्मीकिने जिन्हें अग्निदेव कहकर उल्लेख किया है, उन्होंने रामचन्द्रजीको सम्बोधन करके कहा, "राम, यह लो, यह तुम्हारी जानकी हैं, इन्हें ग्रहण करो। ये मिथिलानरेश जनककी कन्या हैं। इनके शरीरमें पाप छूतक भी नहीं गया है। जानकी मन-वचन-कर्मसे सती हैं और इस संसारमें एकमात्र तुम्हींमें अनुरक्त हैं। जानकीजी जिस समय राक्षसनगरीमें असंख्य राक्षसियोंके पहरेमें बन्द थीं, उस समय इनका चित्त और चरित्र पलभरके

परिमाणमें शक्तिशाली होकर पृथ्वीके पाप-ताप और पापात्माओंकी पाप-दृष्टिसे मनुष्यको बचाये रखती है। इन पण्डितोंने इस बातको प्रमाणित करनेके लिये बहुतसी ऐतिहासिक कहानियोंका दृष्टान्त दिया है। उन्होंने ऐसे बहुतसे प्रामाणिक दृष्टान्तोंका उल्लेख किया है कि सती साध्वी स्त्रियां निद्रित अवस्थामें केवल अपने शरीरसे निकली हुई तेजःशक्तिके असीम प्रभावसे पापस्पर्शसे अपनी रक्षा कर सकी हैं। यदि आजकलकी सती स्त्रियोंकी चरित्र रक्षाके सम्बन्धमें आवरण-मण्डलकी तेजःप्रभा इस प्रकार कारगर होती है तो जगन्माता आराध्य देवी जानकीके शरीरमें वह किस प्रकार विकसित हुई होगी, पाठक इसका स्वय अनुमान कर लें।

* उपर्युक्त वाक्य कविकी कल्पना प्रसूत है या ऐतिहासिक सत्य भी इनमें है, इस बातकी आलोचना द्वितीय परिच्छेदमें की जायगी।

लिये भी कलुषित नहीं हुआ था। इनकी आत्माने केवलमात्र तुम्हारे ही ध्यानमें लवलीन रहकर अपनी शक्तिके प्रभावसे इनकी रक्षा की है। जानकीजी सरल शुद्धहृदया और निष्पापा हैं। इस विषयमें अब कोई बात करना बिलकुल बेकार है। अतएव मैं आज्ञा देता हूं कि तुम जानकीको श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके कृतार्थ होओ।" *

रामजी देवताकी बात सुनकर थोड़ी देरतक हर्षसे आंखें फाड़ फाड़कर देखते हुए स्तम्भितसे खड़े रहे। तदनन्तर मुक्त-कण्ठसे बोल उठे, "मैं भी जानकीको जानता हूं। मैं जानता हूं कि जानकी अनन्यहृदया प्रकृत पतिपरायणा और अकेले मुझमें लवलीन हैं। इस संसारमें मुझे छोड और किसीकी मूर्त्ति जानकीके हृदयपटलपर कभी अङ्कित हुई ही नहीं। कल्पनामें भी किसी प्रकारके कलङ्कने जानकीके निर्म्मल चरित्रको अपवित्र

* एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम्,
अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः।
विधूयाथ चितां तां तु वैदेहीं हव्यवाहनः,
उत्तस्थौ मूर्त्तिमानाशु गृहीत्वा जनकात्मजाम्।
तरुणादित्यसङ्काशां तप्तकाञ्चनभूषणाम्,
रक्तांबरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम्।
अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम्
ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः।
अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः,
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते।
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा,
सुवृत्ता वृत्तशौण्डीरं न त्वामत्यचरच्छुभा।

नहीं कर पाया है। मैं यह भी जानता हूं कि जानकी अपने तेजोमय चरित्रशक्तिके प्रतापसे ही सर्वत्र सुरक्षित रह सकती हैं। जैसे समुद्रकी तटवर्त्ती पर्वतकी चट्टानपर हजार चेष्टा करनेपर भी समुद्रकी लहरें नहीं पहुंच सकतीं, उसी प्रकार रावणकी सारी चेष्टायें इनके सामने व्यर्थ हुई हैं। वह दुराचारी मनमें भी इस सतीका अपमान करनेमें समर्थ नहीं हुआ है। क्योंकि महासती जानकीका रावणके अन्तःपुरमे जलती हुई आगकी लौकी तरह स्पर्श करना भी कठिन था। सारांश यह कि प्रभा जैसे सूर्य्यसे स्वभावतः अविच्छिन्न है उसी प्रकार जानकी भी मुझसे सर्वदा अभिन्न और अविच्छिन्न हैं। जानकी तीनलोकमें पवित्र हैं और कीर्त्ति को जैसे मनस्वी पुरुष त्याग नहीं सकते, उसी प्रकार जानकीको भी त्यागना मेरे लिये असम्भव है।"

रामचन्द्रजी फिर कहने लगे—"देवताओ, आप लोग संसारके रक्षाकर्त्ता, दयालुहृदय और स्वभावतः ही परहिताकांक्षी हैं। आपने जो बातें अभी कही हैं वे सभीके लिये मंगलजनक हैं।

रावणेनापनीतैषा वीर्य्योत्सिक्तेन रक्षसा,
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जने वने।
रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा,
रक्षिता राक्षसीभिश्च घोराभिर्घोरबुद्धिभिः।
प्रलोभ्यमाना विविधन्तर्ज्यमाना च मैथिली,
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना।
विशुद्धभावा निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व राघव,
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते।

लंकाकाण्डम्—विंशत्यधिकशततमः सर्गः।

मैंने जानकीको अत्यन्त शुद्धाचारिणी और सती-साध्वी समझते हुए भी श्रवणकटु दुर्वचनोंका प्रयोग करके अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिये प्रेरित किया था। वह सिर्फ लोकापवादसे बचनेके लिये ही। आज आप लोगोंकी बातोंसे उस विषयमें भी सम्पूर्ण निश्चिन्त हुआ। अब मैं सहर्ष जानकीको ग्रहण करता हूं।*

---

*'तत. प्रीतमना राम. श्रुत्वैव वदतां वरः,
दध्यौ मुहूर्तं धर्म्मात्मा हर्षव्याकुललोचनः।
एवमुक्तो महातेजा धृतिमानुरुविक्रमः,
उवाच त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः।
अवश्यचापि लोकेषु सीता पावनमर्हति,
दीर्घकालोषिताचेय रावणान्त पुरे शुभा।
बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मज',
इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्यहि।
अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम्,
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम्,
इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा,
रावणो नातिवर्त्तेत वेलामिव महोदधि'।
न च शक्त' स दुष्टात्मा मनसापि च मैथिलीम्
प्रधर्षयितुम् प्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव।
नेयमर्हति वैक्लव्य रावणान्तःपुरे सती,
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा,
न विहातु मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा।
अवश्य च मया कार्य्यं सर्वेषां वो वचो हितम्,
स्निग्धानां लोकनाथानामेवच वदतां हितम्।
लंकाकाण्डम्—विंशत्यधिकशततमः सर्गः।

रामचन्द्रजीकी बात पूरी होनेपर हजार कण्ठोंसे फिर एक बार गगनस्पर्शी जयजयकारका गर्जन हुआ और इस बार जानकीके सूखे होठोंपर एक हंसीकी रेखा दीख पड़ी। जानकीजी अग्नि-परीक्षाके उद्देश्य और देवचरित्रकी गति और परिणतिको सम्यक उपलब्ध करके रामचन्द्रजीके प्रति भी प्रसन्न हुईं। रामचन्द्रजीने एक एक करके आविर्भूत हुए सभी देवताओंको प्रणाम करके उनकी पूजा की। इसी समय श्वेताम्बरधारी श्वेतमूर्त्तिवाले एक देवतापर सहसा उनकी दृष्टि जा पड़ी। वह देखते ही कांप उठे और उस देवपुरुषके चरणोंको छूकर उन्होंने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। देवताने रामचन्द्रजीको गाढ़ आलिंगन करके स्नेहपूर्ण मीठे स्वरमें कहा :—

"मेरे राम, तुम मुझे पहचान सकते हो? मैं तुम्हारा पिता दशरथ हूं। तुम्हें आशीर्वाद देनेके लिये मैं देवताओंके साथ यहां आया हूं। मैं तुम सरीखे पुत्रके पुण्य प्रतापसे स्वर्गवासी हुआ हूं सही, पर आज तुमको यहां विजयी देख जो आनन्द पा रहा हूं, स्वर्गवासका सुख भी उसकी तुलनामें कुछ नहीं। कैकेयीने जो कड़ी बातें कहकर तुम्हें वनवास करनेके लिये मुझे बाध्य किया था वे आजतक शूलकी तरह मेरे हृदयंको खोभते थे। मैं आज तुम्हें लक्ष्मणके साथ निरापद देखकर ग्रहणमुक्त सूर्य्यकी नाईं दुःखरहित हुआ हूं। कौशल्या इतने दिनपर आज कृतार्थ हो गयीं। वनवाससे जब तुम घर लौट जाओगे वह तुम्हें देखकर अत्यन्त सुखी होंगी। पुरवासी लोगोंका भी सौभाग्य

है कि वे तुम्हें राजसिंहासनपर राज्येश्वरके रूपमें अभिषिक्त करेंगे। वत्स! भरत सच्चमुच अत्यन्त धर्मपरायण वीर पुरुष है। उसका स्वभाव अत्यन्त निर्मल और मनमें अनुरक्त है। तुम जाकर भरतसे मिलो, यही देखनेकी अब मेरी इच्छा है। मेरी प्रतिज्ञाको पूरी करनेके लिये तुम वनवासी हुए थे। अब तुमने लक्ष्मण और जानकीके साथ वनवासकी निर्दिष्ट अवधि बिताकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है और दुराचारी रावणका वध करके देवताओंको प्रसन्न किया है। तुम इस कठिन कार्य्यका सम्पादन करके यशके भी भागी हुए हो। अब भारत साम्राज्यके राजपदपर अभिषिक्त होकर भाइयोंके साथ चिरंजीवी होओ।"

देवमूर्त्ति दशरथ लक्ष्मणको भी आलिंगन करके बोले—"पुत्र, तुम निरन्तर मन वचन कर्मसे राम और जानकीकी सेवा करना, इसीसे तुम्हें धर्मलाभ होगा। राम सदा मनुष्य-जातिका उपकार करनेमें लगे रहते हैं। रामके प्रसन्न रहनेसे तुम्हारे यश और पुण्यकी बढ़ती होगी।" राम और लक्ष्मणके पीछे जानकी भी दशरथकी ओर ताकती हुई हाथ जोड़े खड़ी थीं। दशरथने जानकीको कोमल और मधुर शब्दोंमें सम्बोधन करके कहा—

"बेटी वैदेही! मैं तुम्हें अपनी कन्याकी तरह प्यार करता हूं। तुम रामके प्रति क्रोध त्यागकर प्रसन्न होओ, यही मेरा अनुरोध है। रामने जो तुम्हारे लिये अग्नि-परीक्षाकी व्यवस्था की थी, इससे वास्तवमें तुम्हारा हित ही हुआ है। इससे तुम्हारे निर्मल

चरित्रकी ख्याति ही हुई है। तुमने अलौकिक शक्ति दिख-लाकर अपने चरित्रकी पवित्रताको बचा रखा है और अग्नि-परीक्षाके कठिन अनुष्ठानसे समस्त संसारके सामने सभी श्रेणी-की नारियोंमे तुम कीर्त्तिमती और यशस्विनी हो गयी हो। तुम सरीखी सतीको पतिसेवाका उपदेश करना निष्प्रयोजन है। तथापि मैं कहता हूं कि तुम अपने पतिको सदा देवता समझ उसमें श्रद्धा रखना।"

इसी प्रकार बातके सिलसिलेमे रामचन्द्रजीने फिर हाथ जोड़कर कहा—"पिता! मेरी वनवास यात्राके समय माता कैकेयी-के प्रति क्रुद्ध होकर कैकेयी और भरत दोनोंको ही कठिन शाप देते हुए आपने उनका त्याग किया था। आप यदि उनके प्रति पुनः प्रसन्न होवें तो मेरा हृदय शीतल हो।" यह बात वाल्मीकिके युद्धकाण्डमें है।

> इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत्,
> कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च।
> सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया,
> स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो।

दशरथजी उत्तर देते हुए बोले, "पुत्र, मैं तुम्हारी बातसे प्रसन्न हुआ और कैकेयी तथा भरत दोनोंहीको मैंने हृदयसे क्षमा किया।" इतना ही कह दशरथजी लक्ष्मण और जानकीको पुनः आशीर्वाद देकर स्वर्गको पधारे। दूसरे देवता भी देखते ही देखते अन्तर्द्धान हो गये। इधर वीरोत्तम रामचन्द्रजीने मुख-

कुराती हुई,प्रेम और स्नेहकी मूर्त्ति जानकीजीको गाढ़े आलिंगनमें बद्ध करके, समवेत योद्धाओंको अपने अपने स्थानपर रात बितानेके लिये कहकर, लक्ष्मण और जानकीके साथ लता-पत्र-निर्मित अपनी प्रवासकुटीमें प्रवेश किया। बहुत देरतक दुःस्वप्न देखनेके बाद जागनेपर जैसा आनन्द होता है अथवा दीर्घकालव्यापी कठिन तपस्याके बाद सुख-शान्तिमयी सिद्धि पा जानेपर जैसा आनन्द होता है, इस समय सुख और शान्ति एक साथ मिल जानेसे रामचन्द्रजीको भी वैसा ही आनन्द हुआ। रामचन्द्रजी सभी प्रकारसे कृतार्थ हो गये।

जानकीकी अग्निपरीक्षा-सम्बन्धी प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानी यहां समाप्त हो गयी। परन्तु इस स्थानपर दो चार कठिन वैज्ञानिक प्रश्नोंका समाधान करना और उत्तर देना बाकी रह गया है। प्रश्न और उत्तर दोनोंकी ही पुस्तकके द्वितीय परिच्छेद-में पाठक आलोचना करेंगे।

स्वनाम-धन्य भवभूतिने जानकी-चरित्रके चित्रकार महाकवि वाल्मीकिको शब्दब्रह्मका सिद्ध पुजारी, साक्षात् सत्यदर्शी महर्षि मानकर उनकी पूजा की है और उनके मनकी प्रतिभाको अपने हृदयमें खींच लानेकी उन्होंने निरन्तर चेष्टा की है। उन्होंने एक स्थानपर उन्हीं वाल्मीकिके भावोंसे अनुप्राणित होकर और जानकीके जगत-पूज्य चरित्र-आलेखको ध्यानासनपर बैठी हुई चित्रित मूर्त्ति समझकर कहा है—"माताकी तरह यह भी संसार-का मंगल विधायक और भागीरथीकी तरह पापोंका नाश

करनेवाला है। उनकी यह उक्ति अक्षरशः सत्य है। क्योंकि जानकीकी इतिहास-कथा जिस स्थानपर पढ़ी सुनी जाती है वहां पवित्रताका स्वर्गीय समीर चलता रहता है, मनुष्योंके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगती है और हृदय उत्कर्ष तथा उच्चताकी अन्तिम सीमापर पहुंच जाता है। जानकीके नामपर पृथ्वीपर अजस्र पुष्पवृष्टि हो। यह नाम भारतीय महिलाओंके कोमल हृदयमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रह जावे।

द्वितीय परिच्छेद

काव्य-इतिहास-विज्ञान

"इह प्रत्नपथेनैव तत्त्वं व्याख्यायते परम्।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते।"

हमने जानकीकी अग्निपरीक्षा-सम्बन्धी कथाको ऐतिहासिक घटना कहकर उल्लेख किया है; और हमने यह भी कहा है कि उसे विश्वास करते समय दो एक कठिन वैज्ञानिक प्रश्न सहज ही हमलोगोंके मनमें इसके अन्तराय-स्वरूप उठते हैं। विज्ञानके पहले इतिहास है इसलिये पहला प्रश्न यह उठता है कि यह कहानी इतिहाससे सत्य है कि नहीं। जानकीकी सचमुच परीक्षा हुई थी या इस कहानीका आद्योपान्त सभी वृत्तान्त काव्य-कल्पतरु कविगुरु वाल्मीकिकी कल्पनामात्र है?

अग्निपरीक्षाके वृत्तान्तका यदि पृथ्वीके इतिहासमें किसी दूसरी जगह उल्लेख न हुआ होता—यदि इस पृथ्वीपर और किसी देश या युगमें किसी दूसरे स्त्री-पुरुषके भाग्यमें अग्नि-परीक्षाकी कठोर व्यवस्था न की गयी होती तो जानकीकी अग्नि-परीक्षा सम्बन्धी सभी बातोंको धर्म्मानुरागसे विह्वल हुए

कविकी कल्पनाका अपूर्व उच्छ्वास कहकर उसकी उपेक्षा भले ही कर सकते थे। परन्तु वास्तवमें अग्नि-परीक्षाकी विधि किसी न किसी रूपमें प्राचीन इतिहासकी प्रसिद्ध विधि है। सभी देशोंके इतिहासमें ही, कभी साधारण रूपसे और कभी विशेष गम्भीरताके साथ इसका उल्लेख किया गया है। जिन्होंने ऐतिहासिक तथ्यकी नाना प्रकारसे आलोचना करके एक सिद्धान्तपर पहुंचनेकी विशेष चेष्टा की है उन लोगोंके लेखोंमें भी इसकी प्रामाणिकता स्वीकार की गयी है। ऐसी अवस्थामें यदि हम पुराने इतिहासके साक्ष्यका विश्वास करें तो हमें अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि अग्निका स्पर्श कराकर चरित्रकी पवित्रताकी जांच करना केवल भारतीय कविकी मनगढ़न्त काव्यकल्पना नहीं है।

यूनानियोंमें समय समयपर अग्नि-परीक्षाकी व्यवस्था की जाती थी। इसके प्रमाण यूनानी कवि सफोक्लिसके ग्रन्थ हैं। सफोक्लिसने अनेकों नाटक लिखे हैं। उनके एक नाटकमें आत्माकी पवित्रताको प्रमाणित करनेकी प्रार्थनाका साफ उल्लेख किया गया है। जिस सम्बन्धमें किसी विशेष विषयको लेकर उनके देशवासियोंके मनमें सन्देह होता है उस विषयमें अपनी निर्दोषिता प्रकट करते हुए वह महापुरुष दृढ़ और निर्भीक हो कहते हैं—"आओ, जलते हुए लोहेका फल लेकर मेरे सामने आओ; मैं उस अग्निदग्ध लोहेके फलको हाथमें लेकर अपनी छातीपर रख लूंगा या कहो तो मैं आगमें कूद

पड़ूँ।"* यद्यपि ऐसी परीक्षा जानकीकी अग्निपरीक्षाकी श्रेणीमें गिनी नहीं जा सकती है तथापि यह भी एक प्रकारकी अग्निपरीक्षा ही है और नाट्य साहित्यमें उल्लिखित होते हुए भी ग्रहणीय प्रमाण है। जिस देशके लोगोंने अग्निपरीक्षाके किसी अनुष्ठानको आंखोंसे देखा नहीं और न कानोंसे इसके विषयमें कोई कहानी सुनी है उस देशके काव्य-नाटकमें इसका इस प्रकार उल्लेख रहना बिल्कुल असम्भव है।

हमलोगोंके लिये जैसे वेद या रामायण-महाभारत हैं, उसी प्रकार यहूदी जातिके लिये पुराना टेस्टामेंट (Old Testaments) पवित्र धर्म-ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ एक ओर जैसे महाकाव्य है दूसरी ओर वैसे ही उनका गौरवमय जातीय इतिहास है। यहूदियोंके इसी जातीय इतिहासके डेनियलकी पुस्तक (Book of Daniel) नामक तृतीय परिच्छेदमें एक साथ ही तीन ईश्वरभक्त नवजवानोंकी अत्यन्त भीषण अग्नि-परीक्षाकी घटनाका उल्लेख ऐतिहासिक पद्धतिके अनुसार स्पष्ट शब्दोंमें किया गया है। जिनकी परीक्षा ली गयी थी उनके सिरका एक बाल अथवा उनके परिधेय वस्त्रका एक तागा भी अग्नि छूतक नहीं गयी। राजा और राजकर्मचारी इसे देखकर कितने विस्मित हुए थे, विस्मयकी भाषामे इसका वर्णन किया गया है।

*Sophocles as translated and quoted by Eppes Sargent Author of "The Despair of Science" &c, &c

राजाका नाम है द्वितीय नेबुकनेजर। यह पहले बाबिलन और जेनेवाका सम्राट् था; जिस समयकी यह घटना है उस समय वह यहूदी राज्यका भी नया अधिपति हुआ था। इसने सन् ६०६ ई० पू० में सिंहासनारोहण किया था और सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्तिमें पचहत्तर वर्षतक साम्राज्यपर आधिपत्य जमाये रखकर सन् ५८१ ई० पू० में स्वर्गको प्रस्थान किया। हम इस समय जिस अग्नि-परीक्षाके वृत्तान्तका उल्लेख कर रहे हैं उस अनुष्ठान-की व्यवस्था करनेवाला यही नेबुकनेजर (Nebuchadnezzor) है।

नेबुकनेजरने जब अनेकों लड़ाइयोंके बाद यहूदी राज्यको अपने अधिकारमें कर लिया उस समय धर्माभिमानी यहूदियोंके जातीय धर्मको जड़से उखाड डालना ही, कुछ दिनोंके लिये उसके जीवनका प्रधान व्रत हो गया। यहूदी राज्यकी राजधानी जारु-सलेममें एक पुराना विख्यात देवमन्दिर था। यहूदीलोग उस मन्दिरको स्वर्गसे भी अधिक पवित्र समझते थे और प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। नये सम्राट्ने उस मन्दिरको लूटकर उसकी सारी सम्पत्तिको अपनी पुरानी राजधानी बाबिलनको भेज दिया। इसके कुछ दिन बाद उसने उस मन्दिरके निकटवर्त्ती दुरा (Dura) नामक रमणीय मैदानमे अपनी एक स्वर्ण-प्रतिमा* प्रतिष्ठित की और आदेश प्रचार कर दिया कि सभी

*यह निश्चय करके नहीं कहा जा सकता कि वह मूर्त्ति सम्राट्की अपनी प्रतिकृति थी या उन्होंने अपनी कल्पना द्वारा किसी विशेष देवताकी मूर्त्ति गढ़वायी थी।

यहूदी उस प्रतिमाके निकट सवेरे और शामको एकत्र होवें और जब जब जैसे जैसे राजप्रासादके प्रकोष्ठसे वेणु, वीणा और वंशीकी ध्वनि सुन पड़े उस मूर्त्तिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करें।

इस अजीब और अपूर्व आज्ञाको लेकर यहूदी राज्यमें बहुत आतङ्क फैल गया। कितने आदमी घरबार छोड़कर इधर उधर भाग गये, कितनोंने लुक छिपकर अपनी जान बचायी। भागे हुए लोगोंमेंसे अनेकों निर्दयी सैनिको द्वारा पकडे गये और हथकड़ी बेडीमें जकड़कर बाबिलन भेजे गये। जिनकी आत्मा कमजोर थी, जो देखावटी धर्मका ढोंग रचनेवाले थे उन्होंने दलके दल आकर उस स्वर्ण-प्रतिमाके सम्मुख घुटने टेककर प्रणाम किया; किन्तु तीन ईश्वरभक्त निडर नवजवानोंने, विजयी सम्राट्के सम्मुख लाये जानेपर उसकी प्रतिष्ठित मूर्त्तिके निकट सिर झुकानेसे एकदम अस्वीकार कर दिया।

तीनों नवजवानोंके नाम हैं—साद्राक, मेसाक और आदिबेगो* ये तीनों नवजवान विजयी राज्येश्वरके विशेष कृपापात्र थे और उनकी कृपासे उसके सेना-विभागमें ये तीनों सेनानायकके पदपर नियुक्त थे। राज्ञाने कभी इस बातको अपने मनमें स्थान भी न दिया* कि जो उसके द्वारा इस प्रकार अनुगृहीत हैं—उसीके अन्नसे जिनका जीवन-निर्वाह होता है वह उसीकी इच्छाके विरुद्ध खड़े हो जायंगे और उसके द्वारा प्रतिष्ठा की हुई मूर्त्तिके प्रति घृणा दिखलायंगे। अतएव जब उसने सुना कि साद्राक आदिने

*Shadrach Meshach and Abednego

बड़ी घृणाके साथ उसकी आज्ञा मानना अस्वीकार किया है तब वह क्रोधसे जल उठा और उन्हें तुरत हथकड़ी बेड़ीसे जकड़कर जलते हुए अग्निकुण्डमें झोंक देनेके लिये आदेश दिया।*

तुरत आदेश कार्य्यरूपमें परिणत हुआ। राजा कितना ही निष्ठुर और पापी क्यों न हो भृत्योंको उसकी आज्ञा माननी ही पड़ेगी। सेवक सैनिकोंने साद्राक, मेसाक और आवेद्निगो तीनोंके हाथ पैर जल्दी जल्दी बांधकर उन्हें अग्निकुण्डमें झोंक दिया।† कुण्डकी अग्नि इतनी अधिक जल उठी थी कि जो लोग इन निर्दोषी नवजवानोंको उसमें झोंकनेके लिये कुण्डके निकट गये वे अग्निकी लौसे झुलसकर तुरत मृत्युके ग्रास बन गये। उनकी ऐसी अवस्था देखकर राज्येश्वर और उसके पार्श्वचरोंको कितना भय और आश्चर्य्य हुआ इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। थोड़ी देरके बाद, स्वय राजा नेबुकनेजरने, कुण्डकी ओर देखकर साद्राक आदिकी उस समयकी अवस्था जाननेके लिये उत्सुकता प्रकट की। किन्तु उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि साद्राक, मेसाक और आवेद्निगो तीनों ही उस जलती हुई अग्निमें निरापद रहकर इधर उधर टहल रहे हैं। उनके शरीरके सभी बन्धन टूट या जल गये

---

* "And he commanded the most mighty men that were in his army to bind Shadrach, Meshach, and Abednego and to cast them into the burning fiery furnace."

† "Then these men were bound in their coats, their hosen and their hats, and their graments, and were cast into the midst of the burning fiery furnace"

हैं और एक देवताकी मूर्त्ति मानों उन्हें सान्त्वना और अभय देनेके लिये उनके सामने खडी है।

यह कहना व्यर्थ है कि इस अलौकिक दृश्यको देखकर नेवुक-नेजरके मनमें उसी क्षण एक आश्चर्यजनक परिवर्त्तन हुआ। जिन तीनों नवयुवकोंकी परीक्षा ली गयी थी वे राजाकी आज्ञासे अग्नि-कुण्डसे बाहर निकाले गये और आशातीत सम्मानके साथ उनका अभिनन्दन हुआ। राजा, राजकुमार, राज्यके प्रधान शासक, और सेनापति तथा राजाके अमात्यगण ये सभी लोग वहां उपस्थित थे। इन सभी लोगोंने उन तीनों नवयुवकोंके पास जाकर तन्न तन्न करके उनके अंग-प्रत्यंग और कपड़े-लत्तेकी जांच की और देखा कि अग्निने उन अभागे नवजवानोंपर तनिक भी असर नहीं किया है, उनके सिरका एक बाल भी आगकी आंचसे झुलसा नहीं है, पहने हुए कपड़ोंमें अग्निके छूनेका चिह्न भी नहीं है और शरीरमें आगका नामोनिशान भी नहीं पाया जाता।

❀"And the princes, governors and captains, and the King's counsellers, being gathered together, saw these men upon whose bodies the fire had no power, nor was an hair of their head singed, neither were their coats changed, nor the smell of fire had passed on them &c &c

डेनियलके इस वर्णनके साथ वाल्मीकिके निम्नलिखित श्लोक मिलान करके पढ़नेसे आपको आश्चर्य्य होगा, क्योंकि यह वाल्मीकिके श्लोकका अनुवाद मालूम पड़ता है। वह श्लोक यह है :—

"रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुंचितमूर्द्धजाम् ,
अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम्।"

यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है इसका उत्तर पीछे देंगे, किन्तु इस समय हम पाठकोंको यह ध्यानमें रखनेके लिये कहेंगे कि साद्राक इत्यादिकी अग्निपरीक्षा सम्बन्धी आश्चर्य-जनक कहानी जैसे यहूदियोंके धर्म-ग्रन्थोंमें पायी जाती है उसी प्रकार बाबिलनके इतिहासमें भी इस प्रकारकी घटनाका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इन घटनाओंको पीछेके इतिहास-कारोंने भी सच्ची घटना कहकर स्वीकार किया है।

इंगलेण्डका इतिहास और व्यवस्था-विज्ञान ये दोनोंही अग्नि-परीक्षाकी सत्यताका साक्ष्य देते हैं। ग्यारहवीं शताब्दीमें इंग्लैण्ड की रानी* सुन्दरी एमा, नोर्मन-ड्यू रिचार्ड की कन्याक और इंग्लैण्डके राजा एडवर्ड-दी-कनफेसरकी माताने किस प्रकार अग्नि-परीक्षाके द्वारा अपने निर्मल चरित्रका प्रतिपालन करके जानसे रक्षा पायी थी, इतिहासमें इसका वर्णन मिलता है। अग्निपरीक्षाकी प्रणाली, प्रक्रिया और इस भयंकर पद्धतिकी विचित्रता आदिके विषयमें अनेकों बातें ब्लैकस्टानके † व्यवस्था

* "Queen Emma, daughter of Richard II. Duke of Normandy and mother of Edward the Confesser the king of England She lived in the 11th Century"

† Fire ordeal was performed, either by taking up in the hand, unhurt, a piece of red-hot iron of one, two, or three pounds' weight, or else by walking, barefoot and blindfold, over nine red-hot ploughshares, laid lengthwise, at unequal distances, and if the party escaped being hurt, he was adjudged innocent, but if it happened otherwise, he was then condemned as guilty"

विज्ञानमें विस्तारपूर्वक लिखी हुई हैं। जिन्होंने अविश्वासी वाल्टर स्काटके ऐतिहासिक उपन्यासों, विशेषकर उनके फेयर-मेडआव्-पार्थ (Fair Maid of Perth) नामक उपन्यासमें लिखी हुई टीकाओंको पढ़ा है वे अवश्य ही इंग्लैण्डकी अग्निपरीक्षा सम्बन्धी रिवाज और विधिके विषयमें बहुत कुछ जानते हैं।

अग्नि-परीक्षा जब इस तरह आधुनिक इतिहास और यूरोपीय व्यवस्था-शास्त्रसे भलीभांति परिचित है तब यह कहना क्या न्यायपूर्ण होगा कि जानकीकी अग्नि-परीक्षाकी कथा जिसे भारतीय कविने वर्णन की है, अप्राकृतिक और असम्भव है ?

वाल्मीकिकी जगत्-प्रसिद्ध रामायणमें ऐतिहासिक सत्य यहूदियोंके मूलभूत ऐतिहासिक सत्यकी तरह अनेकों स्थानमें कल्पनाके कुसुम-जालमें ढंक गया है। उस कल्पनाने कभी बाणके अग्रभागपर वज्रावस्फोटकी भांति संस्कारको भस्म कर देनेवाली अग्नि जलायी है और कभी जलपूर्ण काले बादलोंकी मूसलधार वर्षासे अग्निको बुझा दिया है। वास्तवमें वाल्मीकि-की कल्पनाने अपने देशकी चिन्ताकी धारा और चिरपरिचित मार्गका अनुसरण करके अनेकों आश्चर्यजनक घटनाओंकी सृष्टि की है—सम्भवके साथ असम्भव और लौकिकके साथ अलौकिक तथा अद्भुतको मिला जुलाकर उन्होंने किस प्रकार लोकोत्तर सौन्दर्य्यकी रचना की है यह किसीसे छिपा नहीं है। परन्तु कविकल्पनाके इस प्रकारके उद्दाम-विलास और उन्मद-लीलाके होते हुए भी रामायणकी कथामें जिन

मौलिक घटनाओंका वर्णन किया गया है उनमेंसे एक भी झूठ नहीं है।

लोकाभिराम रामचन्द्रजीकी उदार कीर्ति, रामके द्वारा विश्वामित्रके आश्रममें ताड़का-वध और मिथिलामें धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञाको पूरी करके जानकीका पाणिग्रहण, मन्थराकी कुमन्त्रणासे राम-जानकीका वनवास, रामके शोकमे दशरथकी मृत्यु, वनमें जानकीका हरण, जानकीके उद्धारके लिये वन्य सेनाका संग्रह, राम-रावणका दीर्घकालव्यापी समर और समरमें रावणका समूल नाश होना इत्यादि सभी घटनायें प्रकृत और सत्य हैं। वाल्मीकिके परवर्त्ती ऋषियों और कवियोंने—ऋषियोंमें कृष्णद्वैपायन व्यास और कवियोंमें कालिदास, भवभूति, मुरारी और तुलसीदास इत्यादि सभी लोगोंने ही—उल्लिखित अग्निपरीक्षाके वृत्तान्तको मौलिक घटना कहकर स्वीकार किया है। और भारतवर्षके बड़े बड़े ज्ञानी-विज्ञानी भी आदि कालसे इस प्रसिद्ध कहानीकी सत्यताको स्वीकार करके जनकनन्दिनीकी पवित्र स्मृतिको अपने अश्रुजलसे तर्पण करते हैं। जिसे अनादि कालसे सभी लोगोंने सत्य माना है आज हम किस प्रकार असार तर्कोंपर निर्भर करके उस जगद्विख्यात विचित्र घटनाको अमूलक समझ उसकी उपेक्षा कर सकते हैं और जिनके चरित्रके यशोगौरवकी सदैव सहस्रो कण्ठोंसे प्रशंसा की जाती है—जिनका इतिहास बिजलीकी शक्तिसे भी अधिक आकर्षण शक्तिका प्रयोग करके संसारकी

असंख्यों नारियोंको अहोरात्र पवित्रताकी ऊंचीसे ऊंची चोटीपर खींच रहा है, उनके जीवनकी मुख्य घटनाको झूठ समझकर हम कैसे उड़ा दे सकते हैं ?

किन्तु जो लोग जड़ विज्ञानको ही संसारका एकमात्र वेद समझकर पूजते हैं उन लोगोंका यहां दूसरा और सबसे कठिन प्रश्न है। वे लोग इस जगह अवश्य प्रश्न करेंगे कि मनुष्य आगमें हाथ रखता है और आग उसे जलाती नहीं यह कैसे हो सकता है ? दाहिका शक्ति तो अग्निका स्वाभाविक धर्म है। अग्नि क्या कभी मनुष्यके अनुरोध और उपरोध या अन्य किसी कारणसे उस दाहिका-शक्तिसे रहित होकर शीतल समीरकी नाईं स्निग्ध और सुखदायक हो सकती है ?

इस प्रश्नके उत्तरमें हमें अनेकों बातें कहनी हैं। हम उन बातोंको धीरे धीरे कहते हैं और यह भी समझानेकी चेष्टा करते हैं कि क्योंकर हम जानकीकी अग्नि-परीक्षाके वृत्तान्तको सतीके चरित्रके यशोगौरवका द्योतक और जगन्मांगल्य सत्य मानते हैं।

पहली बात—हम भी प्रश्नकारियोंकी तरह विज्ञानके भक्त और उपासक हैं और वैज्ञानिक सत्यकी ही हम निरन्तर पुष्टि करते हैं। विज्ञान हमारी दृष्टिमें विश्वमय भागवत काव्यकी भावार्थबोधिनी आक्षरिक व्याख्या है। अतएव हमें यह दृढ़ विश्वास है और हम नाना प्रकारसे कहते आ रहे हैं कि इस अनन्त क्षमतामय प्रकृति राज्यमें जो चीज या घटना अप्राकृतिक

है उसका संघटित होना बिलकुल असम्भव है, जो अस्वाभाविक है वह स्वभाव जगतमें संघटित नही हो सकती। किन्तु अप्राकृतिक और अस्वाभाविक तत्वसे असाधारण अलौकिक या अतीन्द्रिय तत्त्व सर्वथा विभिन्न है। इस पृथ्वीपर अनेक देशोमें जल सर्वदा जमकर बरफ हो जाता है और उस बरफका लोग व्यापार करते हैं। किसी किसी देशमें बरफ इतनी कड़ी होती है कि लोग उसपर एक प्रकारकी छोटी छोटी गाड़ियां हांककर चले जाते हैं। जो लोग विना बरफके जल नहीं पी सकते उनके सामने जल और बरफका इस प्रकारका रूपान्तर कहकर समझाना निरर्थक है। तथापि एक ऐसी ही घटना इतिहासमें लिखी है कि अमेरिकाका एक विद्वान् परिव्राजक—बहुत दिन हुए—अपने राजासे यह बात कहकर विपदग्रस्त हुआ था कि भिन्न भिन्न देशोंकी प्रकृतिकी विभिन्नताके कारण जलका रूपान्तर हो जाता है। जल जैसे अवस्था-विशेषसे ठण्ढा और गाढ़ा होता है, अवस्था विशेषसे उत्तप्त और सूक्ष्म वाष्पके रूपमें परिणत होकर उड़ जाता है, अग्नि भी उसी प्रकार अवस्था-विशेषसे—अर्थात् अतीन्द्रिय और अधिकतर ऊंची शक्तिके प्रभावसे—अज्ञात और उच्चतर प्राकृत नियमकी विशेष व्यवस्थासे—जलानेवाली न रहकर जलकी नाईं सुख-स्पर्श हो सकती है। इसमें आश्चर्य ही क्या है?

अग्निका इस प्रकारका अवस्था-परिवर्तन अथवा शक्तिलोप अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे सिद्ध किया जा चुका है। जो लोग रसायनिक प्रक्रियामे धुरन्धर विद्वान् हैं, उन्होंने अनेक

प्रकारसे सावधानीपूर्वक, रसायनकी अपरिज्ञेय अध्यात्म प्रक्रियाके साथ अग्निका कोई सम्बन्ध है या नहीं। इसकी परीक्षा की है और उन्होंने देखा है कि एक ही अग्नि एक आदमीको जलाती और दूसरेके शरीरमें शीतसे भीगे हुए फूलकी तरह मालूम होती है। दिन-दोपहर अनेकों मनुष्योंने मिलकर यह भी देखा है कि एक ही मनुष्यको एक समय छूनेपर अग्नि वायुकी तरह ठण्डी और आनन्ददायक प्रतीत होती है तो दूसरे ही क्षण अपनी दाहिका शक्तिकी ज्वालामय क्रियासे जला देती है। अतएव मनुष्य आगमें हाथ रखता है और उसका हाथ उस आगमें जलता नहीं और मनुष्य जलती हुई अग्निमें कूद पड़ता है तौभी दैव-शक्तिके प्रभावसे उसके शरीरको तनिक भी आँच नही लगती, यह बात अब इतिहासवेत्ताओंके निकट असम्भव नहीं समझी जा सकती।

जानकीकी अग्नि-परीक्षाको संघटित हुए आज युगोंपर युग बीत गये। मनुष्यकी बुद्धि और चिन्ताको वहां पहुंचना तो दूर रहा, कल्पना भी वहां असंख्यों वर्षके काल व्यवधानको पाकर जल्दी नहीं पहुच सकती। इङ्गलैण्डकी रानी एमाका वृत्तान्त यद्यपि इतिहासमें उल्लिखित है तथापि वह भी एक तरहसे पुराना ही है। एमाकी परीक्षा ग्यारहवीं शताब्दीमें हुई थी। यह बीसवीं शताब्दी है। एमाकी परीक्षा यद्यपि उस समयके बड़े बड़े विद्वानोंने अपनी आंखों देखी थी तथापि वह वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें विशेष रूपसे विश्वसनीय नहीं जॅचती। इसीलिये हम यहां

पाठकोंके निकट कई एक आधुनिक अग्निवृत्तान्तोंको उपस्थित करते हैं जिनको विज्ञानके द्वारा अच्छी तरहसे सिद्ध कर दिया गया है।

जो शिक्षित समाज अपने पुराने संस्कारोंके वशवर्त्ती होकर दैवी करतबपर एकबारगी विश्वास नहीं रखता वह भी इन घटनाओंपर आद्योपान्त मनन करके पूरे हृदयसे इसे स्वीकार करनेको बाध्य होगा। जो अग्नि लकडी और पत्थरको जलाकर बड़े बड़े नगरोंको उजाड़ कर देती है और वनमें दावानल उत्पन्न करके अपनी जिह्वाको फैलाए हुए संसारका संहार करनेपर उतारू हो जाती है, वही अग्नि अन्तरिक्षचारी देवताओंकी इच्छा होनेपर संसारकी ज्ञानवृद्धि अथवा और किसी मंगलमय उद्देश्यके कारण जानकीके समान देवचरित्रा रमणीके शरीरको छूते समय अमृतके समान शीतल हो सकती है।

भारतके शिक्षित-समाजमें जिन लोगोंने आधुनिक इतिहास और विज्ञानका अध्ययन किया है—अमेरिका और इङ्गलैण्डके गत पचास वर्षोंके तात्विक इतिहासको लेकर जिन्होंने कुछ भी दिमाग लड़ाया है,वे अवश्य ही डेनियल डी० होम (Daniel D. Home) नामक असाधारण और आश्चर्यकर्म्मा पुरुषको अच्छी तरहसे जानते होंगे। जिन लोगोंने होमको अपनी आंखोंसे नहीं देखा था वे लोग समझते थे कि वह किसी अद्भुत विद्याको जाननेवाला बाजीगर है और उसके विषयमें वहुत कुछ अनुमान और कल्पना किया करते थे और जो लोग सत्यकी खोज करनेके

सदुद्देश्यसे निष्कपट भावसे होमके सम्मुख जाते थे और उनसे वार्तालाप करके उनकी कार्रवाईको अपनी आंखो देखते थे वे उनपर मुग्ध हो जाते थे। रूसके प्रथम सम्राट अलेकजेंडर, जर्मनके सम्राट प्रथम विलियम और फ्रांसके सम्राट तृतीय नेपोलियन इत्यादि अनेको दिक्पालोंने अनेकों प्रकारसे उनकी बहुत देरतक परीक्षा की और यह कहकर उनका आदर किया कि होम असाधारण शक्तिसम्पन्न साथ ही नम्र स्वभाववाले आध्यात्मिक पुरुष हैं। यूरोप और अमेरिकाके प्रायः सभी वैज्ञानिकों और धुरंधर विद्वानोंने उनकी सत्यनिष्ठा, सौजन्य और शुद्ध आचरण आदि गुणोंकी महत्ता पर मुग्ध होकर उनके प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति दिखलायी।

होमकी जन्मभूमि स्काटलैण्ड है। बचपनमें उन्होंने अमेरिका-में शिक्षा प्राप्त की थी। पर पीछे यूरोप ही उनका प्रधान कर्म-स्थान बन गया। यहां 'कर्म' से यह न समझना चाहिये कि उन्होंने कोई नौकरी या व्यापार कर लिया था, क्योंकि जिन कामोंके करनेके कारण उनका नाम इतना प्रसिद्ध हुआ है उन कामोंके लिये उन्होंने एक कौड़ी भी किसीसे नहीं ली। तथापि उनका काम था। वह एकमात्र काम था—उदार और अनन्त उन्नतिपूर्ण अध्यात्म-धर्मकी जड़ मजबूत करना, लौकिक जगतमें अलौकिक अध्यात्म-शक्ति अथवा दैवी-शक्तियोंके प्रभावको दिखला देना और पूर्णानन्द परब्रह्मके प्रेम और मंगलमय विशेष

विधान और परलोकके अस्तित्वके विषयमें सबका विश्वास उत्पन्न कर देना।

होमका विश्वास था कि परलोकका अस्तित्व यथार्थ है और इसको माननेके लिये वह सबको उपदेश करते थे। वह पारलौकिक जगतके जल-स्थल-गिरि-कानन इत्यादि नाना प्रकारके दृश्योंको ध्यानावस्थामें अपनी आंखोंके सामने साफ देखते थे और सभीको सरल चित्तसे कहते थे कि "मेरे शरीरमें एक प्रकारका चौम्बक (Magnetic) पदार्थ है जिसे मैं नहीं जानता, किन्तु उसी पदार्थके आकर्षणसे दूसरे लोकमे रहनेवाले परिचित आत्मीय स्वजन और उज्ज्वल मूर्त्तिवाले देवतागण समय समयपर मुझे दर्शन देते हैं और कभी कभी मेरे शरीरमें प्रवेश करके पृथ्वीके जल, अग्नि, सोना, रूपा और काठ-पत्थर इत्यादि सभी प्रकारके जड़ पदार्थोंपर अपने चैतन्य प्रभावका विस्तार करते हैं।"

होमके शरीरमें कौन ऐसा विचित्र पदार्थ था और उस पदार्थमें कौन ऐसी शक्ति थी, इसे वैज्ञानिक विद्वान् अभीतक निश्चय नही कर सके हैं। * परन्तु उनके भीतरके उस पदार्थ और

*इस पदार्थ अथवा शक्तिका विशेष परिचय दुरधिगम्य होनेपर भी वैज्ञानिकोंने इसे Mediumistic Element अर्थात् माध्यमिक शक्तिके नामसे निर्देश किया है। मीडियम शब्द जिस प्रकार अङ्गरेजीमें नवीन अर्थमें व्यवहृत हुआ है, उसी प्रकार माध्यमिक शब्द भी हिन्दीमें नये अर्थमें व्यवहृत हुआ है। वह अर्थ यह है कि जो सत् असत् अथवा दृश्य अदृश्य जगत्के मध्यस्थलमें सेतुस्वरूप,—अर्थात् जिनके शरीरनिहित हैं विशेष

उसकी शक्तिकी अनेकों प्रकारकी क्रियायें उन्होंने अपनी आंखों देखी हैं और उन क्रियाओंके विषयमें अनेकों प्रकारकी परीक्षायें करके अपने संदेहको दूर किया है। उस पदार्थके अलौकिक आकर्षणसे सूक्ष्मशरीरी स्त्री-पुरुष होमके निकट जानेपर जड़ पदार्थके ऊपर कितनी प्रकारकी आश्चर्य्यजनक क्रियायें कर सकते हैं, इस बातको उन लोगोंने रात और दिनके समय, बिजली-बत्तीकी रोशनीमे और सूर्य्यके प्रकाशमे बार बार देखा है।

डि० डि० होमने अध्यात्मशक्तिकी जिन विभिन्न क्रियाओंको दिखलाया है उनका विवरण एक वृहत् ग्रन्थमें लिखा है। यह

शक्तिका आश्रय लेकर सूक्ष्मशरीरी आत्मा जड़ जगतमें प्रवेश और जड़ वस्तुके ऊपर काय्य कर सके वही मीडियम अथवा माध्यम है। वैज्ञानिकोंने कई प्रकारके अनुभवों द्वारा यह भी निरूपण किया है कि यह माध्यमिक शक्ति समस्त नर-नारीके शरीरमें किसी न किसी परिमाणमें अवश्य विद्यमान है। यह बढ़ानेसे बढ़ती है और उपेक्षा करनेसे नष्ट हो जाती है—एक आदमीके शरीरसे होकर दूसरे आदमीके शरीरमें संचारित हो सकती है और यदि दस आदमी एकत्रित होकर निर्दिष्ट नियमसे चेष्टा करें तो इसका विशेषरूपसे विकास होता है। यह शक्ति होम प्रभृति प्रसिद्ध माध्यमिक शरीरमें जिस परिमाणमें लक्षित हुई है, उस परिमाणमें साधारण आदमियोंकी देहमें प्रस्फुटित नहीं होती। जिस प्रकार विद्युत सनातन पदार्थ है, माध्यमिक शक्ति भी उसी प्रकार सनातन पदार्थ है। विद्युत-शक्ति, कुछ ही दिनोंसे आविष्कृत होकर मानव-ससारके लिये आवश्यक वस्तु बन गयी है, उसी प्रकार माध्यमिक शक्ति भी, थोड़े ही दिनोंसे आविष्कृत होकर, पारलौकिक जगतके ज्ञानकी प्राप्तिमें मनुष्यकी विशेष सहायता कर रही है।

ग्रन्थ अठारह पर्ववाले महाभारतकी तरह भिन्न भिन्न भागोंमें बटा हुआ है। वह विस्तृत विवरण यहां सैकड़ों पृष्ठोंमें समाप्त होनेका नहीं, तथापि, इस स्थानपर उससे सम्बन्ध रखनेवाली कई एक क्रियाओंका संक्षेपसे उल्लेख किया जाता है। ऐसा न करनेसे जानकीके अग्नि-परीक्षा सम्बन्धी दुर्ज्ञेय वृत्तान्तको वैज्ञानिक पाठकगण कभी देवताओंका करतब समझकर विश्वास न करेंगे।

होमकी उम्र जब सात वर्षकी थी तभीसे उनके रहनेके गृहमें समय समयपर देवताओंके नाना प्रकारके क्रिया-कलाप लोगोंको देखनेमें आते थे। गृहमें होमको छोड़ और कोई नहीं है, होम बाल्यकालकी चिन्तारहित निद्रामें अज्ञान होकर पड़े हुए हैं। इतनेमें ही कमरेमे कुछ दूरपर रखे हुए टेबुल, चेयर और अन्यान्य काष्ठनिर्मित सामानोंके ऊपर मनुष्यके तालीके शब्द सुन पड़ने लगे। घरकी सभी चीजें किसी आदमीके बिना छूये ही, न जाने किस अज्ञात शक्तिके प्रभावसे, एक स्थानसे दूसरे स्थानपर उठ उठकर जाने लगीं।

होम जब उन्नीस वर्षके अर्धशिक्षित जवान थे उस समय उनकी उपर्युक्त अध्यात्मशक्तिका इतना आश्चर्यजनक विकास हुआ कि उनका नाम यूरोप और अमेरिकामें झोपड़ीसे राजभवन-तक पहुच गया और आबाल-वृद्ध नर-नारी सब जान गये। वह अपनी स्वाभाविक शक्तिको दिखलाकर किसीसे कुछ मांगते नहीं थे तथापि लोग हजार जिह्वासे उनकी निन्दा करने लगे।

वह किसीको हानि नहीं पहुंचाते थे तथापि असंख्यों मनुष्य उनके शत्रु बन गये। उनका यश और सम्मान बहुतोंको शूलकी तरह बेधने लगा। प्रचलित धर्मके प्रचारक अर्थात् वे हृदयहीन धर्मयाचक जो भीषण नरकका डर दिखलाकर लोगोंको रात-दिन सशङ्कित रखना पसन्द करते हैं, कहने लगे कि इसे भूत लगा है। दूसरी ओर देशमें जो लोग धीर, स्थिर, सत्यप्रिय, सज्जन और विद्वान थे वे होमकी कृपासे परलोकके अस्तित्वका प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर मानों कृतार्थ हो गये, वे उनकी ओर झुक गये। उनके साक्ष्योंपर निर्भर करके अनेको समाचारपत्रोंने राजनीतिक आलोचनाको छोड़ पारलौकिक जीवनके अस्तित्वके विषयमें लेख लिखने आरम्भ कर दिये।

जिन लोगोंने लण्डनमें होमसे सम्बन्ध रखनेवाले उस अलक्षित सूक्ष्म शरीरकी शक्तिकी परीक्षा की है उनकी संख्या हजारसे भी अधिक है। उनमेंसे आधुनिक विज्ञानाचार्य सर विलियम क्रूक्स (Sir William Crookes), आलफ्रेड वालेस (Alfred Wallace), लार्ड लिण्डसे (Lord Lindsay) लार्ड एडेयार (Lord Adare), लार्ड डन्नावेन (Lord Daniaven) लार्ड ब्रुहाम (Lord Brougham) आदिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उन लोगोंने भिन्न भिन्न रीतिसे भिन्न भिन्न स्थानों-पर नाना प्रकारके रासायनिक परीक्षक यन्त्रों और बड़े बड़े सूक्ष्म-दर्शी परीक्षाकुशल विद्वानोंको साथ लेकर बड़ी देरतक उनकी परीक्षा की है और रोज रोज उनकी शक्तिका नया नया चमत्कार

और नयी नयी क्रियाओंको देखकर विस्मय और हर्षसे रोमाञ्चित और स्तम्भित हो गये हैं।

उनकी करामातोंमेंसे एक आगे दी जाती हैः—काठका एक बडा टेबुल है; टेबुलका वजन बीस मन है। टेबुलके ऊपर सात आठ बलवान् और सुशिक्षित मनुष्य बैठे हुए हैं। होमने किसी किसी दिन तो उस टेबुलको अपने बायें हाथकी कानी अंगुलीसे सिर्फ छू दिया है, किसी किसी दिन ऐसा भी नही किया, टेबुलसे आठ दस हाथ दूर रहकर उधर दृष्टि लगाये सिर्फ अपनी अंगुली* को हिलाता रहा है पर ऐसी दशामें वह टेबुल बैठे हुए लोगोंका भारी बोझ उठाकर कभी बेलूनकी तरह आकाशमें उड़ जाता है, कभी थोड़ा ऊपर उठकर लहरसे हिलती हुई नौकाकी तरह धीरे धीरे बायें और दाहिने डोलता रहा है। कभी कभी उसने आकाशहीमें एक ओर उलटे रहकर आत्मशक्तिकी महिमा दिखलायी है।* टेबुलके ऊपर जल, दूध और शराब इत्यादि द्रवपदार्थोंसे भरे

---

* The instances in which heavy bodies, such as tables, chairs, sofas etc, have been moved when the medium has not been touching them, are very numerous I will briefly mention a few of the most striking My own chair has been twisted partly round, whilst my feet were off the floor A chair was seen by all present to move slowly, up to the table from a far corner, when all were watching it, on another occasion an arm chair moved to where we were sitting and then moved slowly back again (a distance of about three feet) at my request

Sir William Crookes F R. S.

हुए काँचके पात्र, काँटा, चाकू, चमचा और फूलोंके गुच्छेसे शोभायमान फूलदान तथा कामिनी-जन-रंजन दर्पण इत्यादि सामान रखे हुए हैं; परन्तु टेबुलके हिलते डुलते समय उसपर रखे हुए जलके बर्तन, फूलदान इत्यादि सभी चीजोंने सिमेंटकी मिट्टीसे चिपकायी हुई वस्तुओंकी तरह अचल रहकर परीक्षा करनेवाले विद्वानोंको विस्मित कर दिया है।

एक ऐसे हारमोनियमको जिसे होमने कभी देखा नहीं था एक बक्समें बन्द करके, उस बक्सको फिर एक तांबेके जलमें बन्द किया गया और उसे मिस्टर क्रूक्सके गृहपर रख दिया गया; बक्सकी चाबी मिस्टर क्रूक्सके पास रही; * तथापि देखा गया कि आध्यात्मिक शक्तिके प्रभावसे उसमेंसे बहुतही मीठा स्वर लयतानके साथ सुनाई पड़ रहा है। श्रोताओंमेंसे जिस किसीने अपने मनमें किसी गानका नाम लिया वह गान उस हारमोनियममें अपने आप गाया गया। होमने जिस हारमोनियमको कभी अपनी

On five separate occasions, a heavy dining-table rose between a few inches and 1½ feet of the floor, under special circumstances which, rendered trickery impossible. On another occasion a heavy table rose from the floor in full light while I was holding the medium's hands and feet. On another occasion, the table rose from the floor, not only when no person was touching it, but under conditions which I had prearranged so as to assure unquestionable proof of the fact.

Sir William Crookes F. R. S.

अंगुलियोंसे छूआतक नहीं, ऐसा एक हारमोनियम दूसरे गृहपर रखा गया तथापि होमके वहां रहनेहीके कारण वह हारमोनियम घरमें चारों ओर हवामें उड़ उड़कर गाने लगा और अपने मधुर संगीतसे सभीको मुग्ध करने लगा।

एक दिनकी घटना है। टेबुलके ऊपर फूलके गमलेमें या वहां खड़े हुए किसी आदमीको छातीपरके बटनके छेदमें सहसा एक सुन्दर गुलाबका फूल किसी रमणीके बिम्बाधरकी नाईं खिल उठा। वहां इकट्ठे हुए लोगोंकी नजरोंके सामने कभी बांहसे अलग हुआ एक सुगठित हाथ और कभी बच्चेके हाथकी तरह कोमल हाथ† या कभी कभी तो दो अंगुलियां कमरेके बीचसे या

---

* "Presently the accordion was seen by those on either side of Mr. Home to move about, oscillating and going round and round the cage, and playing at the same time * * * * The instrument then continued to play, no person touching it and no hand being near it" Etc Etc.

Crookes

† "A beautifully-formed small hand rose up from an opening in a dining table and gave me a flower, it appeared and then disappeared three times at intervals, affording me ample opportunity of satisfying myself that it was as real in appearance as my own This occured in the light in my own room, whilst I was holding the medium's hands and feet On another occasion a small hand and arm like a baby's, appeared playing about a lady who was sitting next to

किसी एक कोनेसे धीरे धीरे निकल पड़ीं और गुलाबको उठाकर उन्होंने किसीके हाथमें दे दिया। इस प्रकारके अपार्थिव हाथने कभी दर्शकोंके हाथोंको छूकर, कभी एकर्डियन (Accordion) बजाकरके सभीको आनन्दमें मग्न कर दिया। फिर वह किसीके हाथसे पेन्सिल छिनकर एक कागजपर किसी विषयपर दो एक सतर लिखकर देखते न देखते आकाशमें मिल गया।

होमके निकट लोकान्तरवासी सूक्ष्मशरीरी देवताओंके अलौकिक प्रभावसे इस प्रकारकी कितनी आश्चर्यजनक और दुर्बोध्य घटनायें संघटित हुई हैं, इसकी संख्या नहीं की जा सकती। पर

---

me It then passed to me and patted my arm and pulled my coat several times At another time, a finger and thumb were seen to pick the petals from a flower in Mr Home's button hole and lay them in front of several persons who were sitting near him. A hand has repeatedly been seen by myself and others playing the keys of an accordion, both of the medium's hands being visible at the same time and some times being held by those near him"

* * * * * *

"A luminous hand came down from the upper part of the room and after hovering near me for a few seconds, took the pencil from my hand, rapidly wrote on a sheet of paper, threw the pencil down, and then rose up over our heads, gradually fading into darkness.'

Researches in the phenomena of Spiritualism by Sir William Crookes, F. R S

एक विशेष घटनाका यहां उल्लेख करना इस प्रसंगके लिये बहुत आवश्यक है, इसलिये संक्षेपसे उस घटनाका विवरण यहां दिया जाता है। मनुष्य, पशु-पक्षियोंकी तरह जलमे स्नान करता है— शरीरपर पानी डालकर ठण्डा होता है—यही सब लोग जानते हैं; किन्तु होम कभी कभी दूसरोंके घर दूसरोंके अनुरोधसे जलती हुई अग्निमें स्नान किया करते थे। उन्हे पहले इसका पता भी नहीं रहता था कि वे लोग ऐसा करनेका अनुरोध करेंगे। अकस्मात् प्रस्ताव कर देनेके कारण उन्हें अवसर भी नहीं मिलता था कि वह रासायनिक प्रक्रियाकी किसी प्रकारकी सहायता लेनेके बारेमें कुछ सोचें विचारें। उन्होंने अग्निके उद्दीप्त शिखाके भीतर सिया-शरीरके किसी एक भागको रखकर दिखला दिया कि अग्निके ऊपर अध्यात्मशक्तिका कितना प्रभाव हो सकता है!

इस प्रकार अग्निमें स्नान करते समय होमके शरीरमें एक अपूर्व दैवी आभा उद्भासित हो उठती थी। वह क्षणभर ध्यानमें मग्न रहकर मनही मन प्रार्थना करते थे। प्रार्थनाके बाद जब वह शान्त और गम्भीरभावसे खड़े होकर चारों ओर दृष्टि फेरते और धीरे धीरे श्वेत-शिखामय भयङ्कर अग्निकुण्डकी ओर अग्रसर होते उस समय सभीके मनमें एक प्रकारका आतङ्क और भक्ति उत्पन्न हो जाती थी। पूरे अविश्वासीका मन भी स्वभावतः विश्वासकी ओर झुक जाता था। उस समय सभी साफ समझ जाते थे कि होमके शरीरमें किसी अलौकिक शक्तिका आविर्भाव

हुआ है और पार्थिव होम किसी अज्ञात अपार्थिव शक्तिके आकर्षणसे शक्तिशाली होकर मनुष्योंको देवताओंकी महिमा दिखला रहे हैं।

ऊपर लिखी हुई मुद्रामें जिस समय होम तन्मय होकर ईश्वरके प्रेम, परलोकके अस्तित्व, लोकान्तरवासी पुण्यात्माओंकी सुख-सम्पद, पापियोंके अनन्त नरक और दुःख भोग चुकनेपर धीरे धीरे उनको उन्नति और शान्तिलाभ तथा मानवजीवनमें एक दूसरेके साथ निरहङ्कारभावसे प्रीतिका व्यवहार रखना इत्यादि विषयोंका उपदेश करते थे तब सभीके मनमें ऐसा होता था कि मानों कोई देवता उनमें बैठकर बोल रहा है। जो कोई उनकी बातोंको सुनता काँप जाता था।

ऐसे समयपर वह बार बार कहा करते थे कि पृथ्वीके मनुष्य जिस प्रकार वैज्ञानिक शिक्षाके प्रभावसे उन्नत और शक्तिशाली होकर अग्नि, बिजली इत्यादि पदार्थोंपर अपना असाधारण प्रभुत्व फैलाते हैं उसी प्रकार लोकान्तरवासी देवतागण भी अध्यात्म शिक्षामें उन्नति करके जड़ और अजड़ दोनों ही जगतपर अपना अलौकिक प्रभुत्व विस्तार करते हैं। किन्तु उन लोगोंकी शक्ति अपार है। वे लोग यदि चाहें तो अपनी आकर्षणी और विकर्षणी इत्यादि नाना प्रकारकी शक्तियोंके प्रभावसे जलमें आग लगा सकते हैं और आगको शीतल तथा सुख-स्पर्श कर सकते हैं। होमने अग्निमें स्नान करके इस बातको सम्पूर्णरूपसे सिद्ध कर दिया है।

जिन लोगोंके शरीरमें वह अपनी शक्तिका संचार कर देते थे वे लोग भी अग्निके शीतल स्पर्शसे क्षणभरके लिये एक अनिर्वचनीय सुखमें गोते लेने लगते थे।

अग्नि-स्नानके इस अद्भुत वृत्तान्तके सम्बन्धमें लण्डन जैसे कूट तर्क और क्रूरपरीक्षाके स्थानपर कितना आन्दोलन हुआ होगा और इंग्लैंड तथा अमेरिकाके रासायनिक विद्वानोंने इसपर कितने प्रकारसे आलोचना की होगी, पाठक इसका सहज ही अनुमान कर सकते हैं। वैज्ञानिक पण्डितोंमें जिन लोगोंने इस प्रसङ्गपर अपनी अपनी पुस्तकोंमें अपने अपने विचार, विश्वास प्रकट किये हैं उनमेंसे स्थानाभावके कारण सिर्फ तीन विद्वानोंका नाम दिया जाता है। इनके नाम हैं (१) डाकृर आलफ्रेड रासेल वालेस (Dr Alfred R Wallace) (२) यूजिनी क्रोवेल (Eugene Crowell, M D) और (३) एस० सी० हाल (S C Hall)।

डाकृर वालेस आधुनिक वैज्ञानिक जगतमें आज भी एक ज्योतिर्मय स्तम्भकी तरह खडे हैं और उनकी लिखी हुई अध्यात्म-तत्त्व सम्बन्धी प्रसिद्ध पुस्तकें सभीके लिये सुलभ हैं। यूजिनी क्रोवेल अमेरिकाके विद्वान् हैं। इनकी गिनती साधारण चिकित्सकोंमे होते हुए भी वैज्ञानिक समाजमें ये बड़े प्रसिद्ध हैं। लोकहितैषी, धार्मिक और सुलेखक समझकर सभी इनका आदर करते हैं। इन्होंने भी अपने अध्यात्म-तत्त्व सम्बन्धी वृहत्ग्रन्थोमें अग्निस्पर्श और अग्नि-स्नान सम्बन्धी अनेकों तथ्योंको, उन

निष्प्रयोजन है। परन्तु हालने अपनी वृद्धावस्थामे जलते हुए आगका अंगारा लेकर किस प्रकार सहन कर लिया था और उनकी मूर्ति उस समय कितनी शोभा देती थी, यह पाठकोंको बतला देना जरूरी है।

हालके अग्नि-स्नान और अग्नि-धारणके समय लण्डनके प्रसिद्ध बारिस्टर एच० डी० जेंकेन, (H D. Jemken) लार्ड लिन्ड्से (Lord Lindsay), लार्ड एडेयार (Lord Adare) इत्यादि अनेकों विचारशील विद्वान पुरुष चारों ओर बैठे थे। घरमे अग्निकुण्डकी अग्नि धधक रही थी और होम उस समय देवशक्तिसे प्रभावित होकर बार बार उस अग्निके निकट जाते थे और अपनी देहको कमरतक अग्निमे डुबा देते थे। इसी समय एक आदमीने सन्देहके साथ पूछा—"क्या यह अग्नि किसी दूसरेको स्पर्श कर सकती है?" होमने कहा—"जो लोग ईश्वर और देव शक्तिमें पूरा विश्वास रखते हैं, उनके छूनेपर यह आग उन्हे नहीं जला सकती है।"

होमके भाव-गद्गद् वाक्योंको सुनकर विश्वास और भक्तिके अवतारस्वरूप वृद्ध पण्डित हाल निडर भावसे उठ खड़े हुए। होमने तुरत सम्मुखवर्त्ती अग्निका एक जलता हुआ अंगारा उठाकर हालके सिरपर रख दिया। दर्शकोंने साश्चर्य हालसे पूछा—"कहिये, आपको कैसा मालूम होता है।" हालने उत्तरमें कहा—"आगकी तरह नहीं मालूम होता किन्तु स्पर्शसे कुछ गर्मी मालूम पड़ती है।" तदनन्तर होमने हालके निकट जाकर उनके लंबे

वर्णन किया है। यह वर्णन महानाटकके नवम अङ्कमे मिलता है। यथा—

'वह्नौ प्रविष्टयां सीतायाम्।'

"पद्दे पाणौ लाक्षा वसनमिव कौसुम्भरजनं।
कटिदेशे, केशेष्वरुणरुचि कह्लारकुसुमम्॥
हरिद्रामुद्रास्ये घनकुचतटे कण्ठनिकटे।
कृशानुर्वैदेह्याः शपथसमये भूषणमभूत्॥"

अर्थात्-जब माता जानकीने अग्निमें प्रवेश किया तब अग्निने उनके लिये अपूर्व आभूषणका रूप धारण किया। अग्निकी जलती हुई लौ उनके चरणकमल और हस्तपद्मोंमें अलक्तरागकी भांति, कमरमें कुसुम-राग-रंजित रङ्गीले वस्त्रकी तरह, केशोंमें रक्तोत्पलकी नाईं और मुख,वक्षःस्थल तथा गलेमें हरिद्रावलेपनकी नाईं शोभा देती थी।

श्वेत मस्तकवाले हालके रजतसूत्र सदृश केशोमें वैसी शोभा होनी असम्भव है;पर अग्निशिखाके लोहित आवरणमें वह केश भी थोड़ी देरके लिये अत्यन्त सुन्दर दिखायी देने लगे। आगका गोला जब हालके सिरसे उतार लिया गया तब सभीने देखा

भाग नाटक और कुछ कहानीके रूपमें है। उस पुस्तकको ध्यानसे अवलोकन करनेसे मालूम हो जायगा कि वह अभिज्ञान-शकुन्तला इत्यादि नये नाटकोंसे बहुत पहलेकी लिखी हुई है। किन्तु लेखक कौन है इसका उल्लेख नहीं मिलता है। उसके प्रतिभाशाली और भक्तराज लेखकने अपनेको हनुमत कवि कहकर परिचय दिया है।

किया जा सकता। हां, यह वृत्तान्त और ये सब घटनायें जड़ विज्ञान और तापतत्त्वोंके परिज्ञात नियमोंके अनुसार समझमें नहीं आ सकतीं। *

अग्निके सम्बन्धमे इस प्रकारकी परीक्षा सिर्फ होम और हाल इत्यादि पण्डितोंने ही नहीं की है। सन् १८८० ई० में शिकागो नगरमें मिस सुड्दाम नामकी एक अध्यात्म-माध्यमिकाने देव-शक्तिके आवेशमें अग्नि हाथमें लेकर बहुत देरतक नाना प्रकारके अद्भुत दृश्य दिखलाये थे, जिन्हें देखकर अनेको मनुष्य भय और विस्मयसे दंग रह गये और अनेकोंके हृदयमें उच्च भावोंका संचार हुआ। वह अग्निमें स्नान नहीं करती थीं, पर आगमें जलते हुए काठ अथवा गर्म लोहेको हाथमे उठा लेती थीं। गैसके दीपक या और किसी तरहके दीपककी शिखपर हाथ रखनेसे उन्हे आनन्द मिलता था। वह कहा करती थीं कि एक लोकान्तर-वासिनी देवशक्तिमयी रमणी उनके भीतर प्रवेश करके उनमें शक्तिका संचार कर देती हैं। इसी शक्तिके प्रभावसे प्रभावित होकर वह अग्निकी दाहिका-शक्तिको व्यर्थ कर देती थी और आगका गोला अनायास हाथमें लेकर नाना प्रकारके कौतुक दिखलाती थीं। सुड्दामने जिस सूक्ष्म-शरीरिणीका वर्णन किया

* "These phenomena have now happened scores of times in the presence of scores of witnesses They are facts of the reality of which there can be no doubt, and they are altogether inexplicable by the known laws of Physiology and heat." Dr. Wallace

जगदादर्श परम पुरुषकी जीवनसंगिनी होकर विराजती थीं उस जगन्माताको यदि देवताओंने अशोक वन और अग्नि-कुण्डमें सब तरहसे निरापद रखा, उन्हें आंचतक न लगने दी, तो इसमे आश्चर्य्य और शंकाकी कौनसी बात है। मनुष्य यदि अतीन्द्रिय शक्ति विशेषका प्रयोग करके उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त-भागमें वैज्ञानिक सभ्यताके शीर्षस्थान लण्डन, बोस्टन या सिकागो नगरमें हजारों वैज्ञानिक विद्वानोंकी दृष्टिके सामने अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकता है तो भारतके वाल्मीकि, व्यास इत्यादि महात्मा महर्षियोंसे लेकर करोड़ों मनुष्य आज सात हजार* वर्षसे जिस पुण्यमयी देवीको जगन्माताका अवतार समझकर पूजते हैं —रामायणकी वह गङ्गास्वरूपिणी आशैशव-शुद्धाचारिणी जनकनन्दिनी यदि विशुद्ध स्वर्णप्रतिमाकी नाईं अग्निपरीक्षामें अनायास उत्तीर्ण हुई हैं, तो इसमें तनिक भी सन्देह करना क्या अनुचित नहीं होगा ?

बुद्धि जबतक विज्ञानकी सबसे ऊँची चोटीपर पहुंचकर संसारके रहस्यका अध्ययन करनेमें समर्थ नहीं होती, तबतक वह नित्यप्रतिकी देखी हुई आहार-निद्रा और आमोद प्रमोदकी बातोंको छोड़ अन्य किसी बातको माननेके लिये राजी ही नहीं

---

* रामायणका इतिहास ठीक सात हजार वर्षका पुराना है, या नहीं इस बातको सिद्ध करना कठिन होते हुए भी, ह्वीलर और उनके हिन्दू-संस्कार-शून्य चेले चामुण्डोंको छोड़ कोई भी दूसरा इतिहास-लेखक नहीं कह सकता है कि महाभारतके बाद रामायणकी घटना हुई है।

होती—वह सभीमें शंका करती है। पृथ्वीसे चौदह लाख गुना बड़ा सूर्य्यका गोला आकाशमें विना आधारके लटक रहा है और उस सूर्य्यसे एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योतिकी रेखा सैकड़ों हजारों करोड़ योजन रास्ता तय करके पृथ्वीपर आती है और गुलाब, कमल तथा कुमुदिनी इत्यादि फूलोंके रंग तैयार करती है और सरसोंके समान छोटेसे दानेसे दूर दूरतक फैले हुए शाखा-प्रशाखाओं सहित विशाल वृक्षको उत्पन्न करती है। इन सब बातोंको समझनेमें अपरिपक्क बुद्धि बिल्कुल असमर्थ रहती है। कुछ थोड़ेसे साधारण परमाणुओंके घात प्रतिघातसे एक भयङ्कर तूफान उत्पन्न होकर असंख्यों गाँवोंको ध्वंस कर देता है, मनुष्यकी विचारशक्ति ग्राम नगर, पर्वत-समुद्रको पार करके विना तारके देश देशान्तरकी खबर ले आती है, ये सब बातें भी अपरिपक्क बुद्धिवाले मनुष्यके लिये कम आश्चर्य्यकी नहीं हैं। अयोध्याके अनेकों विचारहीन, कार्य-कारणके तत्त्वज्ञानसे रहित साधारण लोगोंने राम-लक्ष्मण सरीखे महापुरुषोंके साक्ष्यकी उपेक्षा करके जानकीके अग्नि-परीक्षा-सम्बन्धी वृत्तान्तको सन्देह-की दृष्टिसे देखा था। यथा, रामचन्द्रजीके शब्दोंमें—

"यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले,
प्रत्येतु कस्तद्धयतिदूरवृत्तम्।"

"हा! उस अग्नि-परीक्षाके समय जो अद्भुत कार्य्य सम्पा-दित हुआ था, वह बहुत दूर देशकी बात है, उसे कौन विश्वास करेगा?"

जानकीकी अग्नि-परीक्षाके सम्बन्धमें अब सिर्फ एक प्रश्नका उत्तर देना बाकी रह गया है। वाल्मीकि लिखते हैं और उनकी पवित्र कथा तथा पौराणिक ग्रंथलेखकोंके विश्वासपर निर्भर करके प्रत्येक स्वाभिमानी हिन्दू-सन्तान जो अपने पैत्रिक गौरवका गर्व करती है, कहा करती है कि जानकीकी चरित्र-शुद्धिके विषयमें साक्षी देनेके लिये जिस समय सभी देवता श्रीरामचन्द्रजीके निकट आविर्भूत हुए थे, उस समय दशरथजीकी भी शुभ मूर्त्ति श्वेताम्बरसे विभूषित होकर उज्ज्वल वेशमें वहां उपस्थित हुई थी और जानकीजीका अभिनन्दन करके क्षणभरके बाद अन्तर्हित हो गयी थी। राजा दशरथने आकर दर्शन दिया था, यह बात क्या सच है? जिस दशरथने रामके शोकसे व्याकुल होकर 'हा राम!' 'हा राम!' कहते हुए प्राण त्याग दिया था, उसी दशरथने चौदह वर्षके बाद अयोध्यासे हजारों कोस दूर समुद्रसे घिरी हुई लकामें आकर राम-लक्ष्मणके साथ वार्त्तालाप किया था और जानकीजीको आशीर्वाद दिया था, क्या इसे भी आजकलके वैज्ञानिक युगमें मानना पड़ेगा?

इस अन्तिम प्रश्नके उत्तरमें भी मैं निस्सङ्कोच भावसे यही कहूंगा कि जो लोग भिन्न लोकमें गयी आत्माके अस्तित्वको—आत्माके शरीर-परिवर्त्तनको—तथा चर्मचक्षुके परे अध्यात्म-जगतके अस्तित्वको माननेके लिये तैयार नहीं, व्यास वाल्मीकिका उदार धर्म और श्राद्धतर्पणकी विधि-व्यवस्थासे उन्नत हिन्दू-जीवन उनके लिये नहीं है। पृथ्वी जिस समय शिक्षा और

सभ्यताके साधारण प्रकाशसे भी वंचित थी, उस समय वाल्मीकि, व्यास और भारतवर्षके दूसरे दूसरे अनेकों तत्त्वदर्शी ऋषि परलोक, पारलौकिक जीवन,—परलोकमें दो आत्माओंका मिलन और दूसरे लोकमें गये हुए आत्मीय स्वजनोंकी आत्माओंके साथ पार्थिव मनुष्यका जाकर भेंट करना इत्यादि विषयोंपर अनेकों प्रकारकी आलोचना किया करते थे और इसको माननेके लिये सभीको उपदेश करते थे। आजकलके वैज्ञानिक युगमें— विद्युत प्रकाशसे दीप्त विज्ञान-शिक्षाके विविध निकेतनोंमें— क्रूकस्, क्रोवेल, कमिल फ्लामारियन, वालेस, एप्स सार्जेण्ट, वेविट और डेन्टन इत्यादि विश्रुतकीर्ति वैज्ञानिकोंने नाना प्रकारकी कठोर प्रणालियोंसे परीक्षा करके इन्हीं बातोंका समर्थन किया है।

सर विलियम क्रूकस्ने अध्यात्म मूर्त्तिके शरीरसे अलग हुए हाथको अनेकों वार अपनी आंखों देखा है, इसे हमने पहले ही कहा है। उन्होंने साफ देखा है कि रक्त-मांस और चामोंवाली दो अँगुलियां या उसी प्रकारकी पाँच अंगुलियां अथवा अंगुलियों और भुजाओंसे जुड़ा हुआ पूरा हाथ घरमें इधर उधर उड़ रहा है और एक फूल या पेंसिल लेकर खेल रहा है। परन्तु इसके अतिरिक्त एक दिन जबकि वह अपने घरपर अपने बन्धु बान्धवोंके साथ बैठे हुए थे, उन्होंने एक छायामूर्त्तिको प्रत्यक्ष देखा और विस्मयसे अवाक् रह गये। सर विलियमने इस बातको स्वीकार किया है। जो आत्मा सूक्ष्मशरीरी है उसके लिये,

स्थूल परमाणुओंको एकत्रित करके स्थूल शरीर धारण करना और स्थूल जगतमें अपनी मूर्त्तिको प्रकट करना बहुत ही कठिन है। तथापि उन्होंने जिस प्रकार और जैसे समय उस मूर्त्तिको देखा उसे अपनी भाषामें स्पष्ट शब्दोंमें वर्णन किया है। *

एक दिनकी बात है, सन्ध्या हो गयी है। सर विलियम क्रूकस् अपने कमरेमें बैठे हुए हैं। उनके कई एक वैज्ञानिक मित्र डि० डि० होमको घेरकर चारों ओर बैठे हुए हैं। घरके सभी दरवाजे अच्छी तरह बन्द हैं, जंगले भी पर्देसे ढक दिये गये हैं। उस घरमें इतना भी खुला छिद्र नहीं है जिससे एक मक्षिका घुस आवे और उनमेंसे कोई भी न देख सके।

ऐसी अवस्थामें सब देखते क्या हैं कि मनुष्यके आकारकी एक मूर्ति जंगलेके सामने अकस्मात् आविर्भूत होकर खड़ी हो गयी है और जंगलेके पर्देको हाथसे पकड़कर धीरे धीरे हिला रही हैं। मूर्तिका रंग अन्धकारकी छायाके सदृश है तथापि वह कुछ साफ है। ऐसा मालूम पड़ता है कि मानो उसे आरपार देख सकते हैं। जब सभी दर्शकोंने उसकी ओर देखा, तब वह मूर्ति आकाशमें मिल गयी ; पर्दा हिला भी नहीं।

* "Phantom Forms and Faces,—These are the rarest of the phenomena I have witnessed The conditions requisite for their appearance appear to be so delicate, and such trifles interfere with their production, that only on very few occassions have I witnessed them under satisfactory test conditions." Researches in the Phenomena of Spiritualism by William Crooks, F. R S

सर विलियमके विचारसे इसके वादकी घटना अधिक आश्चर्य जनक है। इस दिन भी वह पहलेकी तरह अपने घरहीमें बैठे हुए थे और उनकी परीक्षा करनेके लिये सहयोगी मित्र और डि० डि० होम भी पहलेकी नाईं एक साथ बैठे थे। किन्तु आज़ जो घटना घटी, उसे देखकर सभीके शरीरके रोयें खड़े हो गये। छाया मूर्ति इस दिन घरके भीतर आकर आविर्भूत हुई और सभीके सामने आकर खड़ी हो गयी। वहां एक एकर्डियन रखा हुआ था। एकर्डियन एक प्रकारका वाद्य यन्त्र है। सभी उसे उठाकर सहज ही बजा सकते हैं। वह छाया-मूर्ति उस एकर्डियनको हाथमें लेकर बजाने लग गयी और घरमें चारों ओर घूम घूमकर बहुत देरतक उसने इसी तरह एकर्डियनको बजाया। यह दृश्य केवल भास न था, बल्कि बहुत देरतक स्थायी रहा। इसलिये सबने अच्छी तरह उस मूर्तिको देखा और यन्त्रके उस मधुर वाद्यको सुना। इसी घरमें एक किनारे एक भद्र-महिला अकेली बैठी हुई थी। मूर्ति जब उसके निकट जा पहुंची तब वह डरकर धीरेसे चिल्ला उठी। मूर्त्ति उसकी चीखको सुनकर उसी क्षण तिरोहित हो गयी।*

* In the dusk of the evening, during a seance with Mr Home at my house, the curtains of a window about eight feet from Mr Home were seen to move. A dark, shadowy, semi-transparent form, like that of a man, was then seen by all present standing near the window, waving the curtain with his hand As we looked, the form faded away and the curtains ceased to move.

ऊपर जिस छायामूर्त्तिका उल्लेख किया गया है वैसी मूर्त्ति पृथ्वीके स्थूल परमाणुओंसे किसी अंशमें मिली रहती हुई भी वह प्रतिबिम्बके समान है। किन्तु दशरथने जिस मूर्त्तिमें दर्शन दिया था वह छाया मूर्ति भिन्न प्रकारकी है। अध्यात्मविज्ञानकी भाषामें वैसी मूर्त्तिका नाम कायिक-प्रतिकृति अर्थात् Materialised Form है। वैसी मनुष्य-आकृतिको भली भांति स्पर्श कर सकते हैं। लोकान्तरवासी सूक्ष्मशरीरी आत्मायें अपनी शक्तिके प्रभावसे या शक्ति-सम्पन्न देवताओंको सहायतासे जब छूने योग्य मूर्ति धारण करके पृथ्वीपर प्रकट होती हैं, तब वे मनुष्यकी तरह बात कर सकती हैं और मनुष्यको प्रेमसे आलिङ्गन करके अथवा मनुष्यके शरीरको आशीर्वाद देनेके ढङ्गसे सुहराकर अपने हृदयके प्रेम और स्नेहको प्रकट कर सकती हैं। सर विलियमने अपने गृहपर (और दूसरेके गृहपर भी) इस प्रकारकी जड़ देह धारण किये हुई लोकान्तरित रमणोका कितनी

The following is a still more striking instance As in the former case, Mr. Home was the medium. A phantom form came from a corner of the room, took an accordion in its hand, and then glided about the room playing the instrument. The form was visible to all present for many minutes, Mr Home also being seen at the same time Coming rather close to a lady who was siting apart from the rest of the company, she gave a slight cry, upon which it vanished "

Researches in the Phenomena of Spiritualism by William Crookes, F R. S.

ही बार दर्शन किया है। अपने हाथमें फोटोग्राफिक यंत्र लेकर अपने विश्वासी वैज्ञानिक सहयोगियोंकी सहायतासे उस स्वर्गीय रमणीका फोटो उतारा है, उस रमणीको अपने हाथोंसे छूकर सत्य समझा है और अनेकों प्रकारके वार्त्तालाप करके उन्हें पूरा विश्वास हो गया है कि इंगलैण्ड ही उसका पुराना वास-स्थान रहा होगा। इस बातकी उन्होंने निडर होकर सारी-मानव जातिके सामने गवाही दी है।*

सर विलियमने फोटो लिया है सही, पर उनके मनको सन्तोष नहीं हुआ है। इस विषयमें उन्होंने बड़ी गम्भीरतासे अपना दुःख प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है, "शब्दों द्वारा जैसे उस स्वर्गीय मूर्त्तिकी चाल-ढाल और हाव-भावकी मधुरताका वर्णन करना असम्भव है, उसी प्रकार फोटोग्राफी द्वारा उसके मुख-मंडलके पूर्ण विकसित छलकते हुए लावण्यको प्रतिफलित

* हम लोगोंके पास उस फोटोकी छपी कापी है। परन्तु लण्डनके असंख्यों तत्त्वजिज्ञासु पण्डितोंने असली फोटोको देखा था और बहुतोंने सर विलियमके घरपर अथवा किसी दूसरी जगह कायिक मूर्ति धारिणी, स्वर्गवासिनी स्त्रीको अपनी आंखों देखकर उससे बात की थीं। उस रमणीका पुराना वासस्थान इंगलैण्ड था। वह चार सौ वर्ष पहले इंगलैण्ड-में जन्मी थी। वह पृथ्वीके अनेकों स्थानोंमें भ्रमण करके एक बार भारतमें भी आई थी। उस समय उसका नाम था रानी मोरगन। उस जीवन-की बातें पूछनेपर उसका प्रेम-प्रफुल्ल मुख मेघाच्छन्न आकाशकी तरह तुरत मलीन हो जाता था। कभी पुराना दुःख स्मरण होनेसे उसकी दोनों आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगती थी। परीक्षक और दर्शक कोई भी इसीलिये-उससे पहले जीवनकी बातोंको पूछनेका साहस नहीं करता था।

करना बिल्कुल असम्भव है। फोटोग्राफी अर्थात् प्रभा-चित्रकी प्रतिक्रियाकी सहायतासे उसकी मुखच्छविकी एक साधारण प्रतिकृति (Map) ली जा सकती है, किन्तु उसमें उसके रंगकी अपूर्व उज्ज्वलता, हाव-भावकी चंचलता और अंग-प्रत्यंगकी क्षण क्षणकी परिवर्त्तनशीलता इत्यादिका चित्र खींचना कदापि सम्भव नहीं। वह रमणी अपने पार्थिव जीवनकी दुःखमय अतीत कहानी कहते कहते जब किसी मार्मिक घटनापर आ पहुचती थी तो सहसा उसके मुखपर विषादकी कालिमा पड़ जाती थी। फिर बचपनकी याद आ जानेपर जब कभी वह किसी पवित्र सुखकी कहानी कहना आरम्भ करती थी तब उसका मुख बच्चेके सहज-सरल चेहरेकी तरह खिल उठता था। जो लोग उसके निकट बैठे होते थे उन सभीके मनमें ऐसा भास होता था मानों चारों ओरकी हवा उसके दृष्टिपातसे ही अधिक मन्द और शीतल हो जाती थी और नीलाम्बर आकाश जैसे क्षण क्षणमे अपने वर्ण-वैचित्र्यकी छटा दिखलाता है वैसे ही उसके स्निग्ध मधुर नेत्रद्वय क्षण क्षणमें अपने भाव-वैचित्र्यकी छटा दिखला रहे थे। उसके सत्संगमें रहनेसे ही स्वतः आप अपने मनमें यह भाव उठता था कि ऐसे स्थानपर घुटने टेककर प्रणाम करना मूर्तिपूजा नहीं है।*

---

* जिस मूलका अनुवाद किया गया है उसके पहले भागका तो अक्षरशः चाट कर दिया गया है परन्तु बादवाले अंशका भाव ही उद्धृत किया गया है। मूलका अक्षरशः अनुकरण करनेमें असमर्थ होनेके कारण ही

पाठकोंको यहां यह समझ रखना चाहिये कि लोकान्तर-वासिनीके असामान्य रूप और मधुर वार्त्तालापका जो वर्णन ऊपर दिया गया है वह किसी भावुक-पण्डित या युवक-कविकी रचना नहीं है। जिन्होंने इसे लिखा है वे एक वृद्ध वैज्ञानिक हैं—आधुनिक वैज्ञानिक जगतके वह सर्वसम्मत गुरु माने जाते हैं, जड़-तत्त्वके सर्वप्रधान आचार्य्य और अत्यन्त कठोर, नीरस तथा निष्ठुर तत्त्वपरीक्षककी पदवीके लिये वह प्रसिद्ध हैं। वास्तवमें सर विलियम क्रूकस्की परीक्षा-प्रणालीके ऊपर किसी

यहां भावार्थ लिखनेको वाध्य हुए हैं। पाठकोंकी तृप्तिके लिये सर विलियमके मूल ग्रन्थकी कई एक सतरोंको उद्धृत कर दिया जाता है।

But Photography is as inadequate to depict the perfect beauty of Katie's face, as words are powerless to describe her charms of manner Photography may, indeed, give a map of her countenance, but how can it reproduce the brilliant purity of her complexion, or the ever-varying expression of her most mobile features, now overshadowed with sadness when relating some of the bitter experiences of her past life, now smiling with all the innocence of happy girlhood when she had collected my children round her, and was amusing them by recounting anecdotes of her adventures in India?

"Round her she made an atmosphere of life,
The very air seemed lighter from her eyes,
They were so soft and beautiful, and rife
With all we can imagine of the skies,
Her overpowering presence made you feel,
It would not be idolatry to kneel."

प्रकारके दोष या सन्देहका विचार रख सके ऐसा कोई मनुष्य आजतक नहीं जन्मा है। सर्वसाधारणको दृष्टिके बहिर्भूत किसी निर्जन स्थानमें बैठकर उन्होंने सिर्फ अपने ग्रन्थके पत्रोंमें लिखकर ही इस बातकी साक्षी दी है सो बात नहीं। आज कई एक वर्ष हुए उन्होंने ब्रिटेनकी वैज्ञानिक सभा (British Association of Science) के वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर जहां देशके सभी वैज्ञानिक समवेत हुए थे अपने भाषणमें (Presidential Address) बड़े जोरसे कहा था—"इस प्रत्यक्ष जगतमें जिस स्थानपर जड़-शक्तिकी अन्तिम सीमा है वहीं अनन्त श्रृंखलाओंसे बंधी हुई अध्यात्म-शक्तिका आरम्भ होता है और मैंने देशीय वैज्ञानिकों तथा विद्वत्समाजके विशेष अनुरोधसे पन्द्रह वर्षतक, अध्यात्म-तत्त्वकी पूरी खोज करके जिन आश्चर्यजनक वृत्तान्तोंको संग्रह करके ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित किया है, उनमेंसे एक अनुस्वार विसर्ग भी झूठ नहीं है।*

अमेरिकाके प्रसिद्ध विद्वान और स्वनामधन्य प्रसिद्ध धनकुवेर लिवरमोरने अपनी लोकान्तरित सहधर्मिणी और अपने गुरु वेंजामिन फ्रैंकलिनको लगातार वर्षोंतक अपनी अट्टालिकाके कमरोंमें प्रत्यक्ष देखा था। कानोंसे उनकी मधुर और गम्भीर बातोंको सुनकर, आंखोंसे उनकी चमकती हुई ज्योति-

* Vide Sir William Crookes' Address to the British As sociation of Science, held at Bristol.

मयी मूर्त्तिको देखकर और हाथोंसे उनके कुसुम सदृश-स्निग्ध, कोमल और शीतल शरीरको छूकर कृतार्थ हो गये—हृदयके अनिर्वचनीय हर्षोच्छ्‌वासके कारण उनकी आंखोंसे आसुओंकी धारा बहने लगी।

पाठक वर्षोंकी बात सुनकर आश्चर्य न करेंगे, क्योंकि लिवरमोरने, किस महीनेमें, किस दिन, किस समय, किस अवस्थामें अपनी स्वर्गीया पत्नी एस्टेला (Estella) और डा० फ्रैंकलिनके दर्शन पाये थे, इसे अपनी दैनिक-विवृति (Diary) में क्रमानुसार लिख रखा है और वह दैनिक-दर्शन-कहानी १८६१ ई० फरवरी महीनेसे आरम्भ होकर १८६६ ई० की २ री अप्रैलको समाप्त हुई है। उस समय अध्यात्मतत्त्व-सन्दर्भ (Spiritual Magazine) नामको एक मासिक-पत्रिका कई एक उच्च शिक्षा-प्राप्त धर्म्मानुरागी पण्डितों द्वारा सम्पादित होती थी, जिसे उस समयके बड़े बड़े विद्वान पढ़ा करते थे। लिवरमोरका उल्लिखित मूर्त्ति-दर्शन-वृत्तान्त इस मासिक सन्दर्भमें आद्योपान्त प्रकाशित हुआ है।

इस दैनिक-लिखित वृत्तान्तको लेकर इङ्गलैण्ड और अमेरिकामें किस प्रकार तन्न तन्न करके आलोचना प्रत्यालोचना हुई थी, इसे पाठक अवश्य अनुमान कर सकते हैं। लिवरमोरको जो लोग जानते थे, उनमेंसे किसीको लिवरमोरकी सत्य वादिता-पर सन्देह करनेका साहस नहीं होता था। इतना बड़ा धार्मिक और धनाढ्य मनुष्य, इतना बड़ा स्वदेश हितैषी, सत्य-

प्रिय, सहस्रोंका रक्षक-पालक, किस उद्देश्यसे,किस क्षुद्र स्वार्थके अनुरोधसे लगातार पाँच वर्षों तक झूठ बोलकर मानव-समाजको प्रतारित करेगा ? बलिक उनका स्वार्थ तो इसमें था कि वह सत्यको छिपा लेते, क्योंकि लिवरमोरको बुद्धि-भ्रम हुआ था और वह प्रचलित धर्ममे* विश्वास नहीं रखते थे। इस प्रकारका लोकापवाद फैल जानेसे उनके व्यवसायिक कारबारमें बहुत घाटा पड़नेकी सम्भावना थी। तथापि किसी किसीने ऐसा अनुमान किया कि लिवरमोर शोकसे अभिभूत हैं; इसलिये उनकी स्त्री-मूर्त्तिका दर्शनलाभ शोकाच्छन्न बुद्धिका सामयिक भ्रम हो तो असम्भव नहीं।

इसी प्रकारके संशयकारियोंकी प्रेरणासे पहले डाक्टर जान एफ, ग्रे (Doctor John. F Gray) नामक एक बड़े प्रसिद्ध

* अमेरिका प्रधानतया ईसाईधर्मका माननेवाला है। उस धर्मसे हिन्दू-धर्म-मूल सिद्धान्तोंमें बहुत बड़ा अन्तर है। हिन्दूधर्मके अनुसार मनुष्य पार्थिव शरीरको छोड़कर अध्यात्म-जगतमें अर्थात् पितृलोकमें जाकर वास करता है, इसीलिये उसकी श्राद्धादि क्रियायें की जाती हैं। प्रचलित ईसाईधर्मके अनुसार मनुष्य शरीरको छोड़कर हजारों करोड़ों वर्ष समाधिके भीतर मोहनिद्रामें आविर्भूत हुआ रहता है। जब ससारके महाप्रलयके समय विचारकी भेरी बज उठती है तब वह समाधिसे निकलकर अपने किये कर्मका दण्ड या पुरस्कार पाता है। ईसामसीहने स्वयं ऐसे उपदेशका प्रचार नहीं किया था। उन्होंने जो कहा है उससे हिन्दूधर्मका बहुत मिलान है, क्योंकि उनके मतके अनुसार मनुष्य मृत्युके बाद तुरत सूक्ष्म शरीर धारण करके कर्मानुसार फल भोगता है।

चिकित्सकने, फिर पीछे मिस्टर ग्राउट (Mr. Groute) नामक लिवरमोरके एक संभ्रान्त आत्मीयने कभी जुदा जुदा और कभी मिलकर उनके गृहपर आतिथ्य ग्रहण किया था और उन दोनोंने डाक्टर फ्रैंकलिन और पतिप्रणयाकुला स्वर्गवासिनी एस्टेलाको सजीव मनुष्यकी मूर्त्तिमें प्रत्यक्ष देखा था। उन्होंने इस बातकी जांच करके निस्संदिग्ध भावसे मान लिया कि पारलौकिक जगतके अस्तित्वको झुठाया नहीं जा सकता।

डाक्टर ग्रेको न्यूयार्क नगरमें सभी जानते हैं और वहांके शिक्षित समाजमें उनका बहुत आदर और सम्मान है। उन्होंने अपने प्रिय मित्र एप्स सरजेंटके निकट इस प्रसंगपर जो पत्र लिखा था अध्यात्मतत्त्वके इतिहासमें उस पत्रका बहुत सम्मान हुआ है। ग्रे लिखते हैं—"मैं लिवरमोरके साथ कितने ही दिन परीक्षा करनेके उद्देश्यसे बैठा रहा हूं। वहां मैंने लोकान्तरित दार्शनिक फ्रैंकलिनको सजीव और स्पर्शयोग्य जड़-मूर्त्तिमें अनेकों बार देखा है। हम बैठे हैं, इतनेमें देखते क्या हैं कि घरमें अपूर्व प्रकाश फैल गया है और नाना प्रकारके गन्ध और शब्दोंके कारण हमारे आश्चर्य्यका ठिकाना नहीं रहा है। किसी किसी दिन हम लोगोंकी आंखोंके सामने नाना प्रकारके फूल और विचित्र वस्त्र अपने आप प्रकट हो जाते थे और फिर क्षणहीमें हवामें मिल जाते थे। मैंने लिवरमोरके साथ बैठकर अपनी आंखोंसे इन सब आश्चर्य्यजनक दृश्योंको देखा है। इससे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि उनकी लम्बी दैनिक-विवृत्तिमें जिन दृश्योंका

वर्णन किया गया है और जो दृश्य मेरी अनुपस्थितिमें किसी दूसरेको दृष्टिगोचर हुए हैं वे भी सम्पूर्ण रूपसे और सर्वांशमें सत्य हैं।*

लिवरमोर और डाकृर ग्रे दोनों ही इस समय स्वर्गवासी हो गये हैं इसीलिये हम यहां ऐसे तीन विद्वानोंका साक्ष्य प्रमाण देते हैं जो अब भी जीते हैं। इन्हीं तीन लेखोंको देकर हम इस पुस्तकका उपसंहार करेंगे। कहे हुए तीनों पण्डितोंमें पहले दोनों परिचित हैं. क्योंकि जिन्होंने वालेस और स्टेड प्रणीत ग्रन्थोंका अध्ययन नहीं कि या है वे अध्यात्म-विषयमें बिल्कुल अंधकारमें हैं। हमने "बान्धव" नामक मासिक साहित्य-समालोचन पत्रके अनेकों लेखोंमें वालेस और स्टेडकी बातोंका उल्लेख किया है और देशीय पाठकोंके निकट उनका परिचय

---

* "Another friend, one I have known and honored for thirty years, Dr. John F. Gray of New York, writes (June: 1869) 'Mr Livermore's recitals of the sciences in which I participated are faithfully and most accurately stated, leaving not a shade of doubt in my mind as to the truth and accuracy of his accounts of those at which I was not a witness I saw with him the philosopher Franklin in a living, tangible, physical form, several times, and, on as many different occasions, I also witnessed the production of lights, odour, and sounds; and also the formation of flowers, cloth-textures, &c, and their disintegration and dispersion. &c. &c." Gray's letter quoted by Eppes Sargent.

दिया है। इस पुस्तकमें भी विषयान्तर प्रसंगसे वालेसका उल्लेख किया गया है। वालेस उच्चपदवी धारी वैज्ञानिक हैं, स्टेड उदार-तन्त्री राजनीतिक हैं और स्वाधीनताके लिये उन्होंने सर्वस्व त्याग कर दिया है। उन दोनोंने ही लोकान्तरित आत्माका फोटो लेकर उसकी सत्यताकी मनुष्य समाजके सामने बार बार घोषणा की है और उन्होंने इस महासत्यका प्रचार करके अपनेको कृतार्थ किया है कि मनुष्य यहां जैसे स्थूल शरीरमें वास करता है वैसे ही लोकान्तरमें सूक्ष्मशरीरी अधिकतर सूक्ष्म पदार्थ निर्मित जलस्थलमय प्राकृत जगतमें वास करता है। समय समयपर ये सूक्ष्म शरीरी आत्माएं विशेष नियमका आश्रय लेकर पार्थिव जगतमें दर्शन दिया करती हैं। *

---

* वालेसने अपनी स्वर्गवासिनी माताका एक ऐसा फोटो पाया है जिससे उनकी माताका परिचय मिल जाता है। स्टेडने जिन मृत मनुष्योंका फोटो लिया है उनका छपा चित्र हमारे पास है। हम यहां डाक्टर वालेसके साक्ष्यके सम्बन्धमें उन्हींके लेखका कुछ अंश उद्धृत कर देते हैं—

"The test of clearly recognisable likenesses of deceased friends has often been obtained. Mr. William Howitt, who went without previous notice, obtained likenesses of two sons, many years dead, and of the very existence of one of which even the friend who accompanied Mr. Howitt was ignorant. The likenesses were instantly recognised by Mr. Howitt and Mr W. H declares them to be "perfect and unmistakable" (Spiritual Magazine, Oct. 1872). Dr. Thomson of Clifton obtained a photograph of himself, accompanied by that of a lady he did no

उल्लिखित तीनों विद्वानोंमें तीसरे पुरुषका नाम भारतवर्षमें विशेष परिचित नहीं है किन्तु लंडनमें उनका बहुत प्रभाव है। उनका नाम एन्ड्रू ग्लैंडनिंग(Andrew Glendening)है। ईश्वर-परायण ग्लैंडनिंगकी उम्र इस समय अठत्तर वर्षकी है। हमने वालेस और स्टेडको वड़े वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ कहा है। हमने उन्हें ऋषिप्रतिम नहीं कहा है। ग्लैडनिंगको हम ऋषिप्रतिम, तात्विक कहनेके लिये तैयार हैं, क्योंकि वह चरित्रकी उदारता, हृदयकी महत्ता और जीवनकी प्रशान्त पवित्रताके कारण यथार्थ ऋषि हैं। वह जातिसे अंगरेज होते हुए भी सदाही निरामिषभोजी हैं और इंग्लैण्ड जैसे जनाकीर्ण देशमें रहते हुए भी निर्लिप्त सन्यासी हैं। ग्लैडनिंगके शरीरमें सम्भवतः किञ्चित आध्यात्मिक शक्तिका समावेश है। उन्होंने अपने इस दीर्घ जीवनमें कितनी ही वार

---

know He sent it to his uncle in Scotland, simply asking if he recognised a resemblance to any of the family deceased The reply was that it was the likeness of Dr Thomson's own mother, who died at his birth; and there being no picture of her in existence, he had no idea what she was like. The uncle very naturally remarked that he "could not understand how it was done" (Spiritual Magazine, oct 1873). Many other instances of recognition have since occurred, but I will only add my personal testimony A few weeks back (in 1874) I myself went to the same photographer's for the first time and obtained a most unmistakable likeness of my mother."

अपने गृह अथवा किसी दूसरेके गृहपर छाया-मूर्त्तिका दर्शन पाया है। किसी किसी छाया-मूर्त्तिका फोटो लेकर उन्होंने बड़े यत्नसे संग्रह कर रखा है। आज एक वर्ष हुआ उन्होंने अपने एक सम्बन्धीकी छाया-मूर्त्तिको अपने घरमें प्रत्यक्ष देखकर उसके संबन्धकी सभी बातें इस ग्रंथके लेखकके पास एक पत्रमें लिखी थीं।

पूज्य-स्वभाव ग्लैंडनिंगने सन् १९०८ ई० की १८ वीं अप्रेलको जो पत्र लिखा था उसमेंसे कुछ थोड़ेसे अंशका अनुवाद कर देना हम इस प्रसंगके लिये बहुत आवश्यक और संगत समझते हैं।

"बारह फरवरीकी घटना है। रातके दो बजकर तीस मिनट हुए हैं। मैं इतनी देरतक एकाग्रचित्त होकर अकेले बैठा हुआ लिख रहा था। लिखते लिखते जब थकावट मालूम हुई तो मैं सोनेके अभिप्रायसे शय्यापर लेट रहा और थोड़ी ही देरमें गाढ़ी नींदमें ज्ञानशून्य हो गया। पर वह नींद बहुत देरतक स्थायी न रही। अभी रातके ५ भी न बजे थे इतनेहीमें मेरी नींद अपने आप टूट गयी। मुझे मालूम हुआ कि घरमें कोई और मनुष्य वर्त्तमान है। घरमें गैसके दीपककी रोशनी थी, मुझे भास हुआ कि मेरी छोटी लड़की एफी (Effie) उस दीपककी ओर ताक रही है।

मैंने पूछा, "एफी! तुम इस समय यहां क्यों खड़ी हो?" एफीका अभी विवाह नहीं हुआ है। वह मुझे बहुत प्यार करती है और बड़ी श्रद्धासे मेरी सेवा किया करती है। मैंने पहले यही

समझा था कि शायद सवेरा हो गया है, एफी मेरे लिये गरम चाय लायी है। परन्तु जो मूर्त्ति वहां खड़ी थी उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने जरा विस्मयके साथ सिर उठाकर उसे अच्छी तरह देखा। खड़ी मूर्त्ति भी दीपकके निकटसे धीरे धीरे आगे बढ़-कर मुझसे थोड़ी दूरपर आंखोंके सामने आकर खड़ी हुई और मेरी ओर अत्यन्त स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे निरखने लगी।

बहुत दिन हुए मेरी एक लड़की स्वर्गको सिधार गयी थी। उसे स्नेहके शब्दोंमें टिना कहके पुकारा करता था। टिनाकी एक मौसी भी, बहुत दिन हुए, स्वर्गवासिनी हुई थीं। उनका नाम था फेमी। दोनोंकी आकृति बहुत कुछ मिलती जुलती थी। मैंने जो मूर्त्ति देखी है वह टिनाकी है या फेमोकी इसे मैं ठीक ठीक अनुमान नहीं कर सकता हूं। पर सम्भवतः यह इन्हीं दोमेंसे एककी मूर्त्ति थी। उस समय मैं हर्ष, विस्मय और स्नेहके एक प्रकारके विचित्र संमिश्रणसे विभोर होकर स्नेहसे बोल उठा—"बेटी,तुम टिना या फेमी जो भी हो,तुम वास्तवमें अत्यन्त पुण्य-वती हो। इसीलिये लोकान्तरमें जाकर भी तुमने ऐसी पवित्र, उज्ज्वल और चाँदनीकी तरह शीतल मूर्त्ति प्राप्त की है। तुम यदि अपनी इस कायिक प्रतिकृतिमें बातें करनेकी शक्ति रखती हो तो दो एक बातें करके मेरे इस संतप्त प्राणको शीतल करो।

मूर्त्तिके होठोंसे शब्द न निकले। किन्तु उसकी अमृत-स्निग्ध, शान्त दृष्टिसे मेरा मन सचमुच ही शीतल हो गया। मूर्त्ति इसी तरह बहुत देरतक मेरी ओर ताकती रही फिर उसी जगह,

मेरी आंखोंके सामने ही धीरे धीरे आकाशमें मिल गयी। इस प्रकार अन्तर्धान होनेके समय मैंने देखा कि पहले उसके दोनों पैर लुप्त हो गये हैं, फिर कमर तक उसकी देह लुप्त हो गयी। मैं टकटकी लगाये ताक रहा था। इतनेमें देखा कि अंतमें उस मूर्त्तिका मुख भी हवामें मिल गया। यह आनन्दमय मूर्त्ति कैसे उज्ज्वल वस्त्रसे विभूषित थी, इसे लौकिक भाषामें व्यक्त करना असम्भव है। स्वर्गवासी माता, पिता, मित्र और स्वजन सम्बन्धियोंके दर्शनलाभ सम्बन्धी सैकड़ों मनुष्योंके अभ्रान्त साक्ष्य हमलोगोंके पास लिखकर रखे हुए हैं। हमलोग उन वृत्तान्तोंको देशीय पाठकोंके सामने भिन्न पुस्तकोंके रूपमें रखेंगे और सत्यका प्रचार करके अपना जीवन सफल समझेंगे।

पुस्तकका उपसंहार करते समय हम सिर्फ यही पूछना चाहते हैं कि जब इस युगमें सूक्ष्मशरीरी स्वर्गवासी आत्माओंका दर्शन-लाभ करके मनुष्य अपनेको कृतार्थ समझते हैं, कहीं कोई उज्ज्वल मूर्त्ति अकस्मात् प्रकट होकर और कहीं प्रार्थनाहूत कायिक प्रतिकृतिके दर्शन पाकर लोक परलोक और दैव-क्रियाकी सत्यतापर विश्वास करने लगे हैं और सर्व श्रेष्ठ वैज्ञानिक लोग भी जब ऐसी घटनाओंको प्राकृत नियमके अन्तर्गत कहकर इन्हें पवित्र और सत्य मानने लगे हैं तब हम किस युक्तिपर निर्भर करके हिन्दू जातिके इस ऐतिहासिक सत्य-को अप्राकृतिक कहकर कूड़ा-करकटमें फेंक दें? कैसे कह दें कि रामायणका यह वृत्तान्त कि पुत्रवत्सल दशरथने अपने प्राणा-

धिक रामके निकट उपस्थित होकर राम और जानकीके जगद्दु-र्लभ इतिहासमें अपने हृदयके प्रेमको मिश्रित कर दिया था और जानकीसे स्नेहपूर्ण दो चार बातें करके जगतपावन सती धर्मके गौरवको बढ़ा दिया था, बिल्कुल झूठ और काल्पनिक है ? इसी विश्वासका दृढ़ अवलम्बन करके वाल्मीकिकी भुवनमोहिनी वीणाने अपने अमिय-मधुर विलम्पत-झंकारसे प्रेममय राम और पुण्यमयी जानकीका यशोगान करके भारतवासियोंको भक्तिके उच्छ्वाससे मुग्ध कर दिया है। और इसी विश्वासके वशवर्त्ती होकर भारतके असंख्यों कवियोंकी कोमल प्रतिभा और भक्तोंके मधुर कण्ठ रामके अमृततुल्य कीर्ति और चरित्र तथा जानकीकी अमल कीर्त्तिको कविताओं और गीतोंमें युगों युगों और शताब्दियों शताब्दियों गाते रहे हैं। और इसी असीम विश्वासपर निर्भर करके भारतके कोटियों नरनारियोंकी जिह्वायें अहर्निश राम-जानकीका नामोच्चारण करके आंसुओंकी धारायें बहा रही हैं। आकाशका सूर्य यदि सदाके लिये डूब जाय तो उससे संसारकी उतनी बड़ी हानि न होगी जितनी राम-जानकीकी चरित्र-कथाका लोप होनेसे होगी। क्योंकि पृथ्वीके इतिहास और साहित्यमें इसको जोड़की दूसरी कहानी नहीं है—पृथ्वीके इतिहासमें ऐसी कहानीका लिखा जाना भी सम्भव नहीं। यह आदिसे अन्ततक सम्पूर्ण मंगल-मय है और प्रीति तथा पवित्रताके अपूर्व संमिश्रणसे अमृत-मय हो गयी है।

समास

कुछ सम्मतियोंका सार

पू० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—"मालव-मयूर" बहुत ... निकला। छपाई और कागज उत्तम है। भाषा और विषय-योजना भी ठीक है।

सरदार माधवराव विनायक किबे—मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है यह एक उच्च कोटिका मासिक-पत्र है।

सर्वेन्ट आव् इंडिया—... ..ने एक महत्वपूर्ण पत्रकी वृद्धि की है। मासिक-पत्रका सम्पादन वे विशेष योग्यता और पूरी जिम्मेवारीके साथ करते हैं जो कि हमें महात्मा गांधीकी प्रत्यक्ष देख-भालमें तालीम पाये सज्जनोंमें ... देती है।

प्रताप—"मालव-मयूर" में मौलिकता और सात्विकता है। अधिक विच... और विवेकके साथ चुनी हुई बहुतसी टिप्पणियां इसमें रहती हैं। हमें विश्वास ... कि "मयूर" का मीठा और सात्विक ढंग अपना रंग अवश्य लावेगा और उससे म० भा० और रा० पू० के लोगोंकी अत्यन्त निर्बल और निर्जीव आत्माको बल मिलेगा।

मतवाला—सभी संख्यायें एकसे एक बढ़कर हैं। कवितायें और लेख बड़े ही सुन्दर, सरस और निर्दोष होते हैं। संपादकीय अंश अत्यन्त प्रशंसनीय होता है। अधिक पृष्ठ-संख्या वाले पत्र 'मयूर' से शिक्षा ग्रहण करें।

जयाजी प्रताप—लेख उच्च कोटिके हैं। उनपर दृष्टि रखते हुए अगला नंबर पिछलेसे बढ़ा चढ़ा मालूम होता है।...की टिप्पणियोंमें sense of proportion और sense of responsibility होती है, जिसकी इस समयके बहुतसे संपादकोंमें कमी नजर आती है।

कविकौमुदी—इसके सम्पादक हिन्दीके अच्छे और विचारशील लेखकोंमें हैं। संपादकीय नोटोंमें, उनकी स्पष्ट-वादिता, निर्भीकता और उत्तम विचारशैली देखकर चित्त प्रसन्न होता है।

पता—मालव-मयूर, अजमेर,

(राजपूताना)

लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजानिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल, अजमेर

उद्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डलका जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर सर्वसाधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी और सस्ती पुस्तकें इससे प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य, महत्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके लिए हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते हैं—

मंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ घनश्यामदासजी बिडला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) बाबू महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकोंका मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग लागत मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ३) में मिलेंगी। इस तरह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् पुस्तकपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारणके लिये) तीन आना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अथार्त उन्हें १) में लगभग साढे चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाएँ

हमारे यहांसे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो मालाऐं निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालामें लगभग सात आठ पुस्तकें (कम या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकोंकी पृष्ठ-संख्या मिलाकर लगभग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें या न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी होगी।